हिन्दी

शीराज़ा



जे.एण्ड के.अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़, जम्मू

द्विमासिक

शीराज़ा हिन्दी

दिसंबर–जनवरी, 2004

प्रमुख संपादक

रमेश मेहता

संपादक

श्याम लाल रैणा



जे० एंड के० अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, जम्मू-180 001

Sheeraza Regd. No. : 28871/76 December-January, 2004
(Hindi)

वर्ष : 39 अंक : 5 पूर्णांक : 166

Editor-in-Chief

RAMESH MEHTA

Editor

SHYAM LAL RAINA



★ पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं इनसे अकादमी या संपादन मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

आवरण : टी०एस० बत्रा

प्रकाशक : सचिव, जे० एंड के० अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, जम्मू-180 001

संपर्क : संपादक, शीराज़ा हिन्दी, जे० एंड के० अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, जम्मू-180 001 ; दूरभाष : 2577643, 2579576

मुद्रक : रोहिणी प्रिंटर्ज़, कोट किशन चंद, जालंधर, पंजाब-144 004 दूरभाष : (0181)-5087310

मूल्य : एक प्रति : 10 रुपये; वार्षिक : 50 रुपये

इस अंक में

संपादकीय

यह बात सर्वमान्य है कि साहित्य अपने वर्तमान का आईना होता है, बिल्कुल उसी तरह जिस तरह पत्रकारिता। परन्तु दोनों में एक विशेष अन्तर स्पष्ट है। पत्रकारिता से जुड़े लेखन की उम्र बहुत कम होती है जबकि श्रेष्ठ साहित्यिक रचना चिरजीवी होती है। पत्रकारिता से जुड़े लेखन के लिए आवश्यक है कि वह वर्तमान में अपनी मौलिकता सिद्ध करे जबकि सृजनात्मक साहित्य वर्तमान की कोख में से जन्म लेकर समय की सीमाओं के पार सहज ही लांघ, अपनी मौलिकता स्थापित करता है। "से दिस सिटी हैज़ टैन मिलियन सोल्ज़" हिटलर के ज़माने में रचित यहूदी सम्प्रदाय की निर्वासन की ज़िंदगी का दर्द अभिव्यक्त करने वाली कविता है। परन्तु अभिव्यक्ति समय की सीमाओं से मुक्त रहते हुए जितनी ताज़ा तब थी, उतनी ही आज भी है, उतनी ही कल भी रहेगी। यही मौलिक साहित्य है।

जम्मू-कश्मीर में पिछले पचास वर्षों में जो साहित्य निर्वासन को लेकर लिखा गया उसमें से अधिकतर अपने समय की सीमाओं में ही काल-कवलित हो चुका है। जिसे हमने निर्वासन साहित्य का नाम दिया है उस साहित्य का एक विश्लेषणात्मक मूल्यांकन अभी किया जाना बाकी है। हम 'शीराज़ा' के लिए तद्‌विषयक आलोचनात्मक आलेखों का स्वागत करेंगे।

श्याम लाल रैणा

ऋग्वैदिक समाज में दाम्पत्य-जीवन

❑ डॉ० नीहारिका लाभ

'वेद' भारतीय समाज एवं संस्कृति के प्राण हैं तथा वेद के बिना भारतीय जीवन की कल्पना करना भी सम्भव नहीं। 'विद्' धातु से निष्पन्न वेद ज्ञान के अक्षय स्रोत हैं, जो हमें ज्ञान, आचार-व्यवहार, नीति एवं सद्विचारों के उत्स तक ले जाते हैं। इसीलिए वेद की व्यवस्था देवत्व की आधारशिला है।

भारतीय जीवन-परम्परा का आदि वेद हैं और चारों वेदों में ऋग्वेद का स्थान प्रथम या अन्यतम है। सामाजिक जीवन का मूलाधार पति-पत्नी या दाम्पत्य है। इन दोनों के मिलन से ही घर में शिशु का आगमन होता है, परिवार में स्थायित्व आता है तथा उसका विस्तार होता है। पति-पत्नी परिवाररूपी शकट के दो चक्र हैं और दोनों का ही महत्त्व समान है। यदि दोनों के सम्बन्ध में माधुर्य है, पारस्परिक सहयोग है तो शकट सुचारुरूपेण गतिमान रहता है, विकास के नव-नव सोपान को प्राप्त करता है, अन्यथा वह टूट कर बिखर जाता है। पाश्चात्य संस्कृति के दुष्प्रभाव से भारतीय दाम्पत्य प्रभावित हुआ है और दिशाहीनता का शिकार भी। फलस्वरूप हमारे समाज में अनेक प्रकार की विसंगतियां उत्पन्न हो रही हैं तथा समाज के विखण्डित हो जाने का खतरा बढ़ता जा रहा है। अपनी इस दुर्दशा का कारण भी काफी सीमा तक स्वयं हम ही हैं, क्योंकि हमने स्वयं अपनी प्राचीन उच्च संस्कृति एवं इनके मूल्यों की उपेक्षा या अवमानना करना आरम्भ कर दिया है। ऐसी दशा में हमें अपनी खोई दिशा, खोए आत्मविश्वास एवं खोए आत्मगौरव की पुनर्प्राप्ति हेतु अपनी वैदिक संस्कृति के उपादानों से आवश्यक निर्देश प्राप्त करने होंगे।

ऋग्वेद के प्राचीनतम भाग को भी यदि लें तो भी घर का केन्द्रबिन्दु पत्नी ही है। ऋषि विश्वामित्र ने सोमपान करके हर्षित हुए इन्द्र से प्रार्थना की है हे इन्द्र! तुमने सोमपान कर लिया है, तुम घर जाओ। तुम्हारे घर में कल्याणी जाया प्रतीक्षा कर रही है।[1] इतना ही नहीं, विश्वामित्र के अनुसार पत्नी ही घर है, इसलिए वे इन्द्र से प्रार्थना करते हैं : मघवन! पत्नी ही घर है, वही योनि है, इसलिए रथ में जुड़े हुए घोड़े तुम्हें वहां ले जाएँ।[2] देवों में केवल इन्द्र की ही पत्नी नहीं है, अपितु सभी तैतींस देवों को पत्नीयुक्त कहा गया है।[3] एक अन्य स्थल पर अग्नि से देवपूजक यजमानों को पत्नीयुक्त करने की कामना की गई है। ऋग्वेद के प्राचीन एवं अर्वाचीन भागों में अनेक बार पति की कामना करने वाली वधू अथवा जाया का उल्लेख हुआ है।[4]

ऋग्वेद काल में विवाह एक पुरुष एवं एक स्त्री के मध्य होता था तथा सामान्यतया समाज में एक-पति-पत्नी विवाह (monogamy) की प्रथा ही प्रचलित थी, यद्यपि बहुपत्नी विवाह (polygamy) के दृष्टान्त भी यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होते हैं।

ऋग्वेद में विवाह एवं वधू के प्रसंग में पुरुष के लिए अनेक शब्दों- जार, मर्य, जनिधा, जनिवत् , वर, वरेयु, वधूयु, दिधिषु, हस्तग्राभ, भर्त्ता तथा पति का प्रयोग हुआ है, लेकिन इन शब्दों में से सम्बन्ध के वाचक केवल अन्तिम दो शब्द भर्ता एवं पति ही हैं।

इन शब्दों पर यदि विचार करें तो पाते हैं कि 'जार' का अर्थ प्रेमी है। 'जार' शब्द के साथ कदाचित् यौन सम्बन्धों का भाव संलग्न नहीं था, लेकिन कन्या और उसके जार में अवैध यौन-सम्बन्धों की सम्भावना से सर्वथा इन्कार भी नहीं किया जा सकता। ऋग्वेद में 'जार' का प्रयोग पति के विरोध में हुआ है। 'मर्य' का अर्थ भी प्रेमी है, जो मर्य धातु से निष्पपन्न है और इसका अर्थ है प्रेम करना। जार के विपरीत 'मर्य' विवाहित और अविवाहित दोनों प्रकार की युवतियों के प्रसंग में प्रयुक्त हुआ है। मर्य शब्द का ऋग्वेद में 'वधूयु' तथा 'पति' शब्द के साथ ही प्रयुक्त हुआ है। जनिधा तथा जनिवत् पुरुष के लिए, विशेषत: विवाहित और सस्त्रीक पुरुष के लिए प्रयुक्त हुए हैं। 'वर' और 'वरयु' शब्द वृ (वरण करना) धातु से निष्पन्न हैं। ऋग्वेद में इसका 'वरण करने वाला' अर्थ में प्रयोग हुआ है। 'वधूयु' नवविवाहित अथवा विवाह के इच्छुक पुरुष के लिए हुआ है। 'दिधिषु' प्रेमी अथवा विवाह के इच्छुक पुरुष के लिए प्रयुक्त होने वाला एक अन्य शब्द है। यह धा (धारण करना, रखना, प्राप्त करना) धातु से निष्पन्न प्रतीत होता है, जिसका अर्थ भरण-पोषण अथवा प्राप्त करने का इच्छुक हो सकता है। 'हस्तग्राभ' विवाह-संस्कार में वधू का पाणि-ग्रहण करने वाले व्यक्ति के विशेषण के रूप में हुआ है। ऋग्वेद में एक बार 'प्रिय' शब्द का भी पति के अर्थ में प्रयोग हुआ है। यह शब्द प्री (प्रसन्न करना) धातु से निष्पन्न हुआ है। भर्तर् (भर्त) शब्द भट् (भृ) धातु से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है भरण करना। ऋग्वेद में 'पति' के अर्थ में इसका प्रयोग केवल एक बार हुआ है। ऋग्वेद, उत्तरवैदिक एवं लौकिक साहित्य में पति के लिए सर्वाधिक प्रचलित शब्द 'पति' ही है। वस्तुत: ऋग्वेद में निश्चितरूपेण पति के लिए प्रयुक्त सम्बन्धवाचक केवल एक यही शब्द है।

ऋग्वेद में विवाह अथवा वधू आदि की अपेक्षा पुरुष के वाचक शब्दों की जैसी बहुलता है, वैसी ही स्त्री के वाचक शब्दों की भी है। वहाँ प्रेमी अथवा पति की अपेक्षा स्त्री को वधू, जनि, जनी, जानि, योषा, ग्ना, मेना, पत्नी, जाया आदि शब्दों में निर्दिष्ट किया गया है। इनमें से विवाह-विधि के प्रसंग में केवल वधू शब्द का प्रयोग हुआ है।

पति और पत्नी की स्थिति के सूचक शब्द

ऋग्वेद में पति और पत्नी के लिए प्रयुक्त होने वाले इन शब्दों के अतिरिक्त कुछ ऐसे शब्द हैं जो समास के अन्त में 'पति' या 'पत्नी' जोड़कर बनाए गए हैं और जिनसे परिवार

में पति तथा पत्नी की स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। पुरुष के लिए ऐसे प्रयुक्त शब्द गृहपति, दम्पति, विशपति तथा जास्पति हैं तथा स्त्री के लिए गृहपत्नी तथा विशपत्नी हैं। 'दम्पति' द्विवचन का स्त्री और पुरुष दोनों के लिए प्रयोग हुआ है। दम्पति विवाह सम्बन्ध में बँधे हुए स्त्री और पुरुष के पारस्परिक सम्बन्ध का भी बोध कराता है, इसलिए दम्पति का अर्थ पति और पत्नी भी है। यम-यमी सूक्त में यमी यम से कहती है, 'जनिता ने हम दोनों को गर्भ में ही दम्पति (पति-पत्नी) बनाया है'- 'गर्भे नु नौ जनिता दम्पती का:।[5]

उर्वशी-पुरुरवस् सूक्त में भी पति-पत्नी के लिए 'दम्पति' शब्द का प्रयोग किया गया है- 'को दम्पती समनसा वि यूयोदध यदाग्नि: श्वशुरेषु दीदयत्।'[6]

पति-पत्नी का पारस्परिक व्यवहार-

(क) प्रेम एवं सौहार्द- ऋग्वेद के प्रसंगों से प्रतीत होता है कि पति-पत्नी का पारस्परिक व्यवहार सामान्यतया मधुर व सौहार्दपूर्ण होता था और वे दोनों एक-दूसरे के पूरक थे। दोनों एक दूसरे की कामना करते थे और पत्नी पति को आनन्दित करती थी।

ऋग्वैदिक पत्नी पति से केवल प्रेम ही नहीं करती थी, बल्कि वह उसकी आज्ञा का पालन भी करती थी और एतद्हेतु तत्पर रहती थी- 'पत्नीव पूर्वहुतिं वावृधध्या उषासानक्ता पुरुधा विदाने।'[7]

ऋग्वैदिक कवियों की दृष्टि में पति की प्रिय होना नारी के जीवन का आदर्श था और पति-सेवित नारी को अनिन्दनीय समझा जाता था, क्योंकि अग्नि को पति-सेवित नारी के समान अनवद्य कहा गया है- 'अनवद्या पतिजुष्टेव नारी।'[8] इसके विपरीत, पति से द्वेष वाली स्त्रियों को दुराचारिणी कहा गया है तथा असत्य व अनृत आचरण करने वालों की उनसे उपमा दी गई है।[9]

पति के प्रति केवल पत्नी का प्रेम एकपक्षीय नहीं था, बल्कि पति भी पत्नी के प्रति उसी प्रकार प्रेमभाव रखता था।

(ख) पति-पत्नी का पारस्परिक महत्त्व- पति-पत्नी का पारस्परिक प्रेम परिवार एवं समाज के लिए भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण था। पति की जीवितावस्था में पत्नी 'सुभगा'[10] कहलाती थी। वधू के 'सौभाग्य' के लिए विवाह-विधि में कामना की जाती थी। इन्द्राणी को सब नारियों में सुभगा (सुहागिनी) कहा गया है क्योंकि उसका पति वृद्धावस्था के कारण कभी मरता नहीं है-

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम्।
नह्यस्या अपरं चन जरसा मरते पति:॥[11]

पत्नी का सब अलंकरण और प्रसाधन पति के लिए होता था और कदाचित् ऋग्वेद काल में भी, आज की भाँति ही, अंगलेप, अंजन, आभरण आदि केवल सुहागिनी स्त्रियों के लिए ही था और विधवा स्त्री के लिए इनका निषेध था।

पत्नी का भी पति के लिए कम महत्त्व नहीं था। यह सत्य है कि जैसे नारी के जीवन में पति की मृत्यु जीवन-रेखा में आमूल परिवर्तनकारी दारुण घटना थी, पति के लिए पत्नी की मृत्यु उतनी भयावह नहीं थी। फिर भी पति-पत्नी के कल्याण एवं आयुष्य के लिए कामना करता था।[12] सायणभाष्य के अनुसार, ऋग्वेद की एक ऋक् में पत्नी के प्राणों के लिए पति के करुण रुदन का उल्लेख है।[13]

पति का महत्त्व पत्नी के प्रति इससे भी प्रकट होता है कि पत्नी अपना उपनाम पति से ही प्राप्त करती थी, जैसे- इन्द्राणी, वरुणानी, अग्नायी, पुरुकुत्सानी, मुद्गलानी इत्यादि।

(ग) पारस्परिक द्वेष व कलह– दाम्पत्य जीवन प्रायः कमनीय, मधुर तथा सौहार्द्रपूर्ण होता था, तथापि ऋग्वेद में ऐसी पत्नियों का भी उल्लेख हुआ है जो पतियों से द्वेष करती थीं तथा दुराचारिणी होती थी।[14] एक अन्य स्थल में परिवृक्ता (उपेक्षिता) स्त्री का संकेत किया गया है, जहाँ वह दूसरा पति भी प्राप्त कर लेती है– 'परिवृक्तेव पतिविद्यमानच्।'[15] बहुपत्नी प्रथा के कारण भी पारिवारिक अशान्ति की सम्भावना बढ़ जाती थी, फिर भी सामान्यतया पारिवारिक कलह एवं विद्वेष कम होते थे।

पति के अधिकार तथा कर्त्तव्य

पत्नी के प्रति पति के अधिकारों तथा कर्त्तव्यों का ऋग्वेद में कोई प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं हुआ, किन्तु पति और भर्त्ता के नाम से ही उसके अधिकारों एवं कर्त्तव्यों का बोध हो जाता है। पत्नी के जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक उपकरण जुटाना तथा उसकी कामना पूर्ण करना पति का कार्य था। पति को पत्नी पर सब प्रकार के अधिकार प्राप्त थे तथा वह पत्नी का त्याग भी कर सकता था।

बहुपत्नी का उल्लेख तो मिलता है किन्तु पति दूसरा विवाह कब कर सकता है, इस विषय में ऋग्वेद मौन है। अस्तु, यह प्रतीत होता है कि प्रजनन में असमर्थ, मानसिक रूप से रुग्ण आदि पत्नी के होने पर पति को दूसरा विवाह करने का अधिकार होता होगा।

पत्नी के अधिकार तथा कर्त्तव्य

यद्यपि ऋग्वैदिक काल में पति को पत्नी पर सब प्रकार की प्रभुता प्राप्त थी, तथापि कुछ बातों में ऋग्वैदिक पत्नी की स्थिति उत्तरवर्ती संहिताओं तथा सूत्रों के काल की पत्नी की अपेक्षा उत्तम थी।

धार्मिक अनुष्ठानों में पत्नी द्वारा भाग लेने के उल्लेख प्रचुरता से उपलब्ध होते हैं। पत्नियों सहित देवों द्वारा अग्निपूजन किए जाने के उल्लेख हैं। सूर्यासूक्त (ऋक् १०, ८५) में वधू के लिए कामना की गई है कि वह पतिगृह में जाकर गृहस्वामिनी बने और सबको अपना वशवर्ती बनाकर देवपूजा (विद्‌थ) में भाग ले– 'गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विद्‌थमा वदासि।'[16] पत्नी पति की अनुपस्थिति में स्वयं भी यज्ञादि कर सकती थी। पति के युद्ध में जाने पर उसकी रक्षा के लिए घर में यज्ञ कर सकती थी। पुरुकुत्स की पत्नी ने अपने पति की अनुपस्थिति में इन्द्र और वरुण को हवि देकर तथा नमस्कार करके प्रसन्न किया था। अपाला ने इन्द्र के लिए सोम का हवन किया था।

पत्नी के धार्मिक अधिकारों की यह परम्परा उत्तरवर्ती संहिताओं तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में भी प्रचलित रही। अथर्वेद में पत्नी को यज्ञिय अर्थात् यज्ञ की अधिकारिणी कहा गया है।[17] शतपथब्राह्मण[18] तथा तैत्तिरीयब्राह्मण[19] में पत्नीरहित पुरुष को यज्ञ का अनधिकारी कहा गया है। फिर भी ऋग्वेदकालीन स्त्री-स्वातन्त्र्य में कालान्तर में ह्रास हुआ। सोमयाग की प्रवर्ग्य-विधि पहले पत्नी का कर्म था, लेकिन बाद में इसे उद्‌गाता करने लगा।[20] इसलिए शनैः शनैः स्त्रियों को धार्मिक कृत्यों, विशेषतः वैदिक कर्मकाण्ड से वहिष्कृत कर दिया गया। मनुस्मृति-काल तक आते-आते वैदिक कर्मकाण्ड में से पत्नी के लिए केवल विवाह-संस्कार ही बच गया और उसके लिए अन्य संस्कार निषिद्ध हो गए।

गृहसम्बन्धी अधिकार-ऋग्वैदिक पत्नी की गृह में स्थिति तथा अधिकार उसके लिए प्रयुक्त होने वाले 'दम्पत्ति' तथा 'गृहपत्नी' शब्दों से ही प्रकट है। वह अपने पति के समान ही घर (दम्) की स्वामिनी होती थी। सिद्धान्ततः वह पति के परिवार के सदस्यों-श्वसुर, श्वश्रू, ननद तथा देवरों पर शासन करने वाली होती थी–

''सम्राज्ञी श्वसुरे भव सम्राज्ञी श्वश्रवां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु।।[21]''

ऋग्वैदिक पत्नी के कर्त्तव्यों में प्रथम तो सन्तान उत्पन्न करना और द्वितीय गृहपति की उसके धार्मिक एवं सांसारिक कार्यों में सहायता करना सम्मिलित थे। पत्नी को घर के पशुओं तथा घर के सदस्यों एवं सेवकों आदि का भी ध्यान रखना पड़ता था।

साम्पत्तिक अधिकार-पत्नी के साम्पत्तिक अधिकारों के बारे में ऋग्वेद में साक्ष्य अत्यल्प, अस्पष्ट एवं सन्दिग्ध हैं। उत्तरकाल में स्त्रीधन[22] अथवा पारिणाह्य[23] के रूप में जिस प्रकार पत्नी का पृथकतया धन स्वीकार किया गया है, ऋग्वेदकाल में पत्नी की उसी तरह की किसी पृथक् सम्पत्ति का न कोई नाम मिलता है न ही उसका कोई स्पष्ट संकेत है। यह स्मरणीय है कि साम्पत्तिक अधिकारों के विषय में भारतीय नारी के अधिकारों में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है।[24]

सामाजिक अधिकार– सामाजिक रूप में पत्नी को ऋग्वैदिक काल में पति के साथ प्रत्येक धार्मिक कृत्य में भाग लेने का अधिकार था और वह गृहस्वामिनी समझी जाती थी, लेकिन उत्तरवैदिक काल में उसकी सामाजिक स्वतन्त्रता तथा अधिकारों में भी ह्रास होता गया।

दाम्पत्य जीवन में एकनिष्ठा

धर्मशास्त्र के अनुसार यज्ञ और सप्तपदी सम्पन्न हो जाने के उपरान्त विवाह अविच्छेद्य हो जाता है।[25] मनुस्मृति के अनुसार पति और पत्नी में मृत्युपर्यन्त अव्यभिचार (एकनिष्ठ) होना चाहिए। संक्षेप में स्त्री-पुरुष का यही सबसे बड़ा धर्म है।[26] विवाहित स्त्री-पुरुष को ऐसा यत्न करना चाहिए कि वे परस्पर धर्मार्थविषयक कार्यों में कभी पृथक् न हों। तथापि पति को एक पत्नी रहते दूसरा विवाह करने का अधिकार था। कुछ विशेष परिस्थिति में स्त्री को भी दूसरा विवाह करने का अधिकार था।[27] ऐसी स्त्री को 'पुनर्भू' कहा गया है।[28] अथर्ववेद के साक्ष्य से यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि अथर्ववैदिक काल में यह विश्वास किया जाने लगा था कि विवाह सम्बन्ध में बँधे हुए युगल का पारस्परिक बन्धन इस जन्म में ही नहीं अपितु मृत्यु के उपरान्त भी बना रहता है। विवाह वस्तुतः सामाजिक विधि ही नहीं अपितु धार्मिक विधि भी समझा जाता था। पति वधू का पाणिग्रहण करते हुए उससे यह प्रतिज्ञा तथा कामना करता था। 'मैं सौभाग्य (सुहाग) के लिए तेरा हाथ पकड़ता हूँ, तू मुझ पति के साथ वृद्धावस्था को प्राप्त कर।'[29] देवों से प्रार्थना की जाती थी कि विवाहित जीवन स्थिर हो। इस प्रकार स्पष्ट है कि ऋग्वैदिक काल में भारतीयों में दाम्पत्य की एकनिष्ठता का आदर्श अवश्य था और यही आदर्श कमोवेश महाराज मनु एवं परवर्त्ती समाजनिर्माताओं ने भी पुनर्स्थापित किए। भारतीय सामाजिक व्यवस्था की निरन्तरता का यही आधार रहा है।

पादटिप्पणियां एवं सन्दर्भ

1. *'अपाः सोममस्तमिन्द्र प्रयाहि कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते।' ऋग्वेद ३, ५३, ६.*
2. *'जायेदस्तं मघवन्त्सेदु योनिस्तदित्त्वा युक्ता हरयो वहन्तु'– तथैव, ३, ५३, ४.*
3. *'पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवाननुष्वधमा वह मादयस्च।' – तथैव, ३, ६, ९*
4. *तथैव, ४, ३, २, ५, ३७, ३, १, ८२, ४ आदि।*
5. *तथैव, १०, १०, ५*
6. *तथैव, १०, १५, १२*
7. *तथैव, १, १२२, २.*
8. *तथैव, १, ७३, ३*

9. तथैव, ४, ५, ५

10. तथैव, १०, ८५, २५

11. तथैव, १०, ८६, ११

12. 'स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु।' तथैव १०, ६३, १६

13. 'रोदनेनापि जायानां जीवनमेवाशासत इत्यर्थः।' ऋग्वेद १०, ४०, १० पर सायणभाष्य (पूणे संस्करणः)।

14. ऋग्वेद, ४, ५, ५

15. तथैव, १०, १०२, ११

16. तथैव, १०, ८५, २६

17. 'योषितो यज्ञिया इमाः।' अथर्वेद ११, १, १७

18. 'अयज्ञी यो वैष यो ऽ पत्नीकः।' शतपथब्राह्मण (हिन्दू परिवार मीमांसा, पृ० १३२ पर उद्धृत)।

19. 'अयज्ञो वा एषः यो ऽ पत्नीकः।' तैत्तिरीय ब्राह्मण, २, २, २, ६: ३, ३, १

20. शतपथब्राह्मण, १४, ३, १, ३५

21. ऋग्वेद, १०, ८५, ४६

22. 'अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तं च प्रीतिकर्मणि।
भ्रातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम्।' मनुस्मृति ९, १९४

23. 'पत्नी वै पारीणह्यस्य ईशे।' तैत्तिरीय संहिता, ६, २, १, १.

24. Kane— "History of Dharmastra vol. 11 part 1, Bhandarkar orintal Research Institute Pune, 1941, pp. 57677."

25. तथैव, पृ. ६११

26. अन्योन्यस्याव्यभिचारो भवेदामरणान्तिकः।
एष धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः॥" मनुस्मृति ९, १०१.

27. वशिष्ठ धर्मसूत्र, १७, ६७; कौटिल्य अर्थशास्त्र, ३, ३-४; पराशरस्मृति, ४, २४

28. Kane-- History of Dharmasastra, voll. 11, pt. 1, pp. 608-11.

29. "गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।" ऋग्वेद, १०, ८५, ३६.



संस्कृत काव्य शास्त्राचार्य आचार्य धर्मसूरी

❑ डॉ० भारत भूषण

संस्कृत काव्यशास्त्र के क्षेत्र में भरत मुनि से पण्डित राज जगन्नाथ पर्यन्त अनेक आचार्यों की सुदीर्घ परम्परा रही है। लगभग 2000 वर्षों की इस परम्परा में कई ऐसे साधकों के नाम प्रकाश में नहीं आ सके हैं, जिनकी रचनाएं महत्त्वपूर्ण होते हुए भी अज्ञात रह गई हैं। इन्ही अज्ञात् विभूतियों में आचार्य धर्मसूरी भी हैं।

धर्मसूरी की वंश परम्परा :

साहित्य रत्नाकर के प्रथम तरंग में श्लोक संख्या 6 से 28 पर्यन्त आचार्य धर्मसूरी की वंश परम्परा का विवरण उपलब्ध होता है। धर्मसूरी के वंश का आरम्भ ब्रह्मा के मानस पुत्र अंगिरा से हुआ था। अंगिरा से हरित उत्पन्न हुए थे। हरित गोत्रीय इस वंश में त्रिपुरारिभट्ट आदि का जन्म हुआ था। वह सभी अपने ज्ञानदान आदि के कारण प्रसिद्ध थे। इन्होंने वाराणसी में ही शिक्षा प्राप्त की थी। इसी कारण इनके साथ वाराणसी शब्द सम्बद्ध हो गया था। त्रिपुरारि के घर धर्म का जन्म हुआ था। इन्होंने प्रसाद मंत्र के सुपुरश्चरण से शिव को वश में किया हुआ था। शिव से इनको वरदान प्राप्त था कि इनकी सात पीढ़ी तक सभी प्राणी सर्वज्ञ होंगे। इनके तीन पुत्र थे, नारायण, पर्वतेश तथा राम।

नारायण वेदों के विशेष विद्वान थे। इन्होंने वैदिक शास्त्रार्थ में ''रामावधानि'' नामक विद्वान को परास्त किया था। जिसके फलस्वरूप राजा ''धर्मभूप'' ने इन्हें अपनी सभा में पालकी, चामर छत्र तथा अवधानीश्वर की उपाधि से सम्मानित किया था।

''सन्तुष्टाद् धर्मभूपादलभत शिबिकांचामरच्छत्रपूर्वं
गर्वाखर्वावधानीश्वरशरभघटागण्डभेरूण्डचिह्नम्।'' सा०र०/21

पर्वतेश अथवा पर्वतनाथ सूरी एक योग्य पण्डित तथा षडदर्शनों के मर्मज्ञविद्वान थे। अपने अग्रज नारायण की भान्ति इन्होंने जनार्दन नामक पण्डित को शास्त्रार्थ में पराजित करके ''वादि केसरी'' का सम्मान अर्जित किया था। शास्त्रार्थ में हार जाने पर जनार्दन पण्डित को ''मायावादिभयंकर'' उपाधि को भी छोड़ना पड़ा था।

संपर्क : *1249, सेक्टर-6, नानक नगर, जम्मू - 180 004*

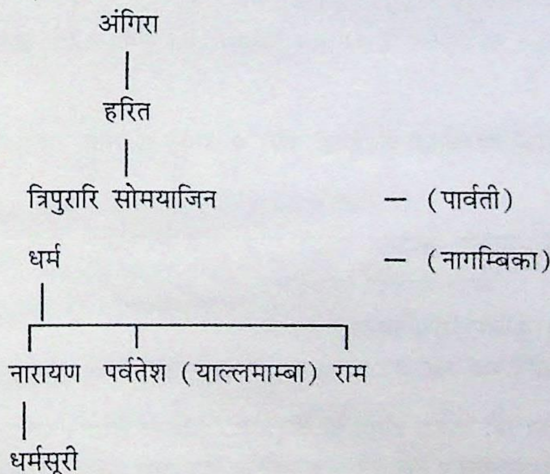
''यो वादेन जनार्दनाह्वयबुधं मध्येविपश्चित्सभ
जित्वाऽविन्दत वादिकेसरिपदं प्रौढं तदीयं स्वयम्
मायावादिभयंकराख्याविरूदादत्यूर्जितादार्जितात्
किंचोदंचयति स्म कीर्तिमतुलां प्रच्यावयन् वैष्णवम्।'' (सार, 26)

धर्मसूरी के चाचा अर्थात् पर्वतेश के अनुज राम अपने अग्रजों से आयु में ही छोटे थे परन्तु पाण्डित्य में उनके समकक्ष थे।

''सोऽयं स्वप्रतिभादृषन्निकषणप्रोद्दीप्तषऽदर्शनी-
रत्नस्रङ् मयकन्धरो यदनुजो रामाह्वयः पण्डितः।'' (सार, 27)

धर्मसूरी पर्वतेश नाथ सूरी तथा याल्लमाम्बा के पुत्र थे। इन्होंने साहित्यरत्नाकर आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की थी।

वंश वृक्ष :



आचार्य धर्मसूरी ने अपनी रचनाओं में अपने विविध नामों का प्रयोग किया है। धर्मसुधी[1] धर्म[2] धर्मसूरि[3] कुत्रचित धर्मसिंह नाम भी उपलब्ध होता है।

---

1. *तस्मात् पर्वतनाथसूरिजलधेः श्रीयल्लमाम्बावियद*
गंगासंगजुषो लसद्गुणमणेर्लब्धोदयश्चन्द्रवत्।
सोऽहं धर्मसुधीर्गवां विलसितैः कर्तुं रसालंक्रिया-
संस्फूर्तिं समुदंचयेपमधुनासाहित्यरत्नाकरम्॥सा० र। 28
2. *श्रीधर्म संख्यावता विरचिते- पृ. 87*
3. *तादृङ निर्मलधर्मसूरिकविता सोल्लासकल्लोलिनी 1/37*

जन्म स्थान :

इनका जन्म कृष्णानदी के तटवर्ती गांव पेदीपुल्लिवरू में हुआ था। वे हरित गोत्रीय तेलांग ब्राह्मण थे।[1] कुछ विद्वानों का मत हे कि इनका जन्म गुन्टूर में काठेवारा के निकट तेनाली में हुआ होगा।[2] इनके वंशज आज भी इस स्थान पर निवास करते हैं हरित गोत्रीय वे ब्राह्मण धर्मसूरी को अपना आदि पुरुष मानते हैं।

समय :

धर्मसूरी ने साहित्यरत्नाकर में अपने से पूर्ववर्ती अनेक आचार्यों को उद्धृत किया है। जिनके आधार पर इनके समय की निम्नतम सीमा निर्धारित करने में सहायंता मिलती है। इस प्रसंग में मुख्यरूपेण आन्ध्र प्रदेशीय आचार्यों का ही वर्णन किया गया है।

पूर्ववर्ती लेखक :

साहित्यरत्नाकर में धर्मसूरी ने एकावली को अनेक स्थलों पर उद्धृत किया है। एकावली आन्ध्र देशीय विधाधर की कृति है। डा० एस० के० डे० ने अपनी पुस्तक में के० पी० त्रिवेदी तथा आर० जी० भण्डारकर के अनुसार विधाधर का समय 13वी शताब्दी का अन्तिम भाग स्वीकार किया है।

धर्मसूरी ने साहित्यरत्नाकर के प्रथम तरंग में अपने पूर्ववर्ती आचार्यों की आलोचना करते हुए कहा है :-

''अलंक्रियाः पूर्वतरैः प्रणीता
न योजिताः काश्चन नायकेन।
कैश्चित् तु कुक्षिम्भरिभिर्निबद्धाः
क्षोदीयसा काश्चन नायकेन॥'' सा. र. 1/31

साहित्यरत्नाकर की मन्दरा टीका के अनुसार ''कैश्चिद विद्यानाथादिभिस्तु'' यह स्पष्ट है कि विद्यानाथ की आलोचना कर रहे हैं। क्योंकि विद्यानाथ आदि अनेक आचार्यो अथवा कवियों ने अपने संरक्षक राजाओं की प्रशंसा में ही काव्य रचना की है। गुणसंख्या के वर्णन में धर्मसूरी ने विद्यानाथ द्वारा स्वीकृत 24 गुणों का 3 गुणों में अर्न्तभाव किया है।

''तान् दश चान्यांश्चतुर्दश विद्यानाथदयः॥'' सार पृ० 363

सहोक्ति अलंकार के वर्णन में भी इन्होंने विद्यानाथ के मत का खण्डन किया है। कहीं-कहीं ''अपरे'' अथवा इनके मत को ''अन्ये'' शब्द से या बिना किसी नामोल्लेख के भी धर्मसूरी ने उद्धृत किया है। महामहोपाध्याय डा० पी० वी० काणे के अनुसार विद्यानाथ विद्याधर

---

1. *नरकासुरविजय व्यायोग (भूमिका) पृ० 7*
2. *E.V.V. Raghavacharya. Dharamasuri. His dates & werks.*

के समकालीन हैं। इनका समय 13वीं शताब्दी का अन्तिम भाग तथा 14वीं शताब्दी के प्रारम्भिक चरण का मध्य भाग है।

अलंकारसर्वस्व पर संजीवनी टीका के लेखक की श्री विद्याचक्रवर्ती का साहित्यरत्नाकर में उल्लेख हुआ है। इतिहासकारों ने इनका समय लगभग 1342 ई० स्वीकार किया है। श्री विद्याचक्रवर्ती 14वीं सदी के आरम्भ में श्री वल्लाल तृतीय के सभारत्न थे।

श्रृंगाररस को संक्षिप्त तथा विस्तृत रूप में स्वीकारते हुए धर्मसूरी ने सर्वज्ञशिंगभूपाल की रचना रसार्णवसुधाकर से एक पद्य उद्‌धृत किया है।

''तत्राद्यो भूपालेनोक्तम्

युवानौ यत्र संक्षिप्तान् साध्वसव्रीडितादिभि:।
उपचारान् निषेवेते स संक्षिप्त इतीरित:।

इति''

सा० र० पृ० 1045

प्रो० शेषगिरी शास्त्री तथा डा० डे ने इनका समय लगभग 1330 ई० निश्चित किया है। परन्तु डा० एम० कृष्णमाचार्य इनका समय लगभग 1400 ई० मानते हैं।

चमत्कारचन्द्रिका के रचयिता श्री विश्वेश्वर कविचन्द्र भी आन्ध्रदेशीय काव्यशास्त्री हैं। इनका समय भी लगभग 14वीं शताब्दी का उत्तरार्ध तथा 15वीं का पूर्वार्ध भाग है। यह सर्वज्ञशिंगभूपाल के राजकवि थे। चमत्कारचन्द्रिका की रचना उन्हीं की स्तुति में कही गई है ग्रन्थ के प्रथम विलास में उन्होंने स्वयं स्पष्ट किया है।

''इति लक्षणकृतिरत्नं रचये
श्रीशिंगनृपगुणोदाहरणम्॥''

च० च० पृ०

धर्मसूरी विश्वेश्वर कविचन्द्र के पद लक्षण से प्रभावित हैं। परन्तु इन्होंने चमत्कार चन्द्रिकाकार का अपने ग्रन्थ में कहीं भी उल्लेख नहीं किया है।

संस्कृत काव्यों के प्रख्यात टीकाकार मल्लिनाथ भी आन्ध्रदेशीय हैं। एकावली पर इनकी तरल टीका का धर्मसूरी ने यथासम्भव उपयोग किया है। किन्तु अपने ग्रन्थ में कहीं भी इनका नामोल्लेख नहीं किया है। डा० भण्डारकर तथा त्रिवेदी के आधार पर डा० एस० के० डे ने इनका समय 1400-1446 निश्चित किया है।

अत: यह निश्चित है कि धर्मसूरी का समय पूर्ववर्णित आचार्यों के पश्चात् का है। इनका कोई भी मानवीय संरक्षक नहीं था। जिसके समय की सहायता से इनके समय का निर्धारण किया जा सके। इन्होंने अपने पितृव्य नारायण का धर्मभूप द्वारा सम्मानित होने का संकेत किया है। परन्तु उनके स्थान एवं समय के संबंध में मौन हैं। इसी प्रकार इन्होंनें अपने पिता श्री को मण्डलेश्वर कहा है। (श्रीमहोपाध्यायपर्वनाथसूरिमण्डितमण्डलेश्वरसूनुना सा० र०

पु० 86) यह स्पष्ट नहीं है कि वह कहाँ के मण्डलेश्वर थे तथा उनका क्या समय था। इसलिए यह प्रमाण भी धर्मसूरी का समय निर्धारित करने के लिए अपर्याप्त है। अत: इनके समय की निम्नतम सीमा 1446 ई० है।

उत्तरवर्ती लेखक :

भानुदत्त की रसमंजरी पर रंगशायी अर्थात् गुरुजालशायी अर्थात् गुरुजालरंगशायी द्वारा आमोद नामक टीका की रचना हुई थी। अपनी टीका में लेखक ने एक अन्य टीका ''परिमल'' की आलोचना की है। परिमल की रचना 1553 ई० से पूर्व हो चुकी थी। इसी सन्दर्भ में रंगशायी ने साहित्यरत्नाकर को उद्धृत किया है। इनका समय लगभग 17वीं शती का पूर्वार्ध है।

संस्कृत काव्यशास्त्र की महान विभूति पण्डितराजजगन्नाथ भी आन्ध्रप्रदेशीय हैं। इन्होंने अपने से पूर्ववर्ती लगभग सभी आचार्यों का अपने ग्रन्थ रसगंगाधर में किसी न किसी रूप में वर्णन किया है। परन्तु आन्ध्रदेशीय धर्मसूरी का नामोल्लेख नहीं किया है। इनके साहित्यसृजन का समय 1620 ई० के पश्चात् का है।

अकबर शाह अथवा बड़े साहिब ने अपनी ''शृंगारमंजरी नामक रचना में साहित्यरत्नाकर की विरहोत्कण्ठिता नायिका के लक्षण का खण्डन किया है। इनकी ख्याती 17वीं सदी के अबुल हसन कुत्व के समय में थी। क्योंकि यह उनके गुरु थे।''

कोल्लारि राजशेखर ने धर्मसूरी के साहित्यरत्नाकर की स्पर्धा की दृष्टि से ही साहित्यक कल्पद्रुम का निर्माण किया था। यह 18वीं सदी तक जीवित रहे तथा पेशवा माधवराव 1760-72 ई० से सम्मानित हुए थे। मैसूर के अनन्ताचार्य अथवा अनन्त की कृति कविसमयकल्लोल में धर्मसूरी के साहित्यरत्नाकर का उल्लेख हुआ है। यह शिंगराचार्य के पुत्र तथा कृष्णराज वोदेयर तृतीय के सभारत्न थे। इनका समय 1822-62 ई० है।

काकूनरी अप्पकवि ने तेलगू व्याकरण तथा काव्यशास्त्र पर ''अप्पकवियम्'' ग्रन्थ की रचना की है। इन्होंने साहित्यरत्नाकर का दो स्थानों पर उल्लेख किया है। प्रथम तो व्याकरण एवं काव्यशास्त्रीय ग्रंथ के रूप में तथा दूसरी बार साहित्यरत्नाकर से एक पद्य उद्धृत किया है। साहित्यरत्नाकरे-

''प्रभूनुद्दिश्य पद्यं व प्रबन्धं वा कदाचन।
न वक्तव्यं न वक्तव्यं मातृकापूजनं बिना॥''

यह पद्य वर्तमान साहित्यरत्नाकर में अनुपलब्ध है धर्मसूरी ने कभी भी किसी राजा की प्रशंसा में काव्यरचना नहीं की थी। उन्होंने तो ऐसा करने वालों की आलोचना की है। इनका समय लगभग 1656 ई० का है। अत: धर्मसूरी 1656 ई० से पूर्ववर्ती हैं यह निश्चित ही है। अप्पकवि का धर्मसूरी के साहित्यरत्नाकर की ओर ही संकेत है। किसी अन्य साहित्यरत्नाकर की ओर नहीं।

गौरनार्य कृत "लक्षणदीपिका" में अलंकार संग्रह कवि कण्ठपाश चमत्कारचन्द्रिका, साहित्यचन्द्रोदय तथा साहित्यरत्नाकर का उल्लेख हुआ है। कुण्डुकरी विरेशलिंगम् के अनुसार गौरनार्य का समय 1440-50 ई० है। राजकीय प्राच्य ग्रन्थ पुस्तकालय मद्रास (जी० ओ० एम० एल०) में लक्षणादीपिका नामक ग्रन्थ की दो प्रतियां उपलब्ध हैं जिनका क्रमांक 12951 तथा 12952 हैं। प्रथम आयमप्रभु के पुत्र गौरनार्य की रचना हैं किन्तु दूसरी पाण्डुलिपि में गौरनार्य के पिता का नाम अय्यालु मंत्री लिखा हुआ है। दोनों ही ग्रन्थों में साहित्यरत्नाकर का अनेकश: उल्लेख है। "प्रभूनुद्दिश्य" आदि पद्य दोनों ही पाण्डुलिपियों में उपलब्ध है। साहित्यरत्नाकर से उद्धृत सभी पद्य विविध छन्दों के उदाहरण हैं। उस समय साहित्यरत्नाकर के नाम से दो ग्रन्थ प्रचलित थे। एक काव्यशास्त्रीय तथा दूसरा छन्दशास्त्रीय। अत: धर्मसूरी का समय 15वीं शताब्दी पूर्वाध निश्चित ही है। जो टीकाकार मल्लिनाथ के लगभग बाद का समय है तथा पण्डितराज जगन्नाथ से पहले का है।

काव्यशास्त्र का इतिहास :

डा० एम० कृष्णमाचार्य के अनुसार धर्मसूरी 16वीं शताब्दी में विद्यमान थे। महामहोपाध्याय डा० पी० वी० काणे का विचार है कि साहित्यरत्नाकर तथा उनके लेखक धर्मसूरी का समय 15वीं शती का प्रथम चतुर्थांश हो सकता है। इन्होंने एक स्थान पर साहित्यरत्नाकर की चर्चा करते हुए इसके लेखक धर्मसूरी का समय 16वीं शती माना है।

डा० एस० के० डे महोदय ने अपने संस्कृत काव्य शास्त्र के इतिहास में धर्मसूरी का समय 1425 ई० स्वीकार किया है। एम. सूर्य नारायण शास्त्री का मत है कि धर्मसूरी 15वीं शताब्दी में ही फलेफूले होंगे।

नरकासुरविजय व्यायोग की भूमिका में कहा गया है कि इसके लेखक 15वीं शती के पूर्वार्ध में विद्यमान रहे होंगे। उस्मानिया विश्वविद्यालय की संस्कृत परिषद हैदराबाद से प्रकाशित साहित्यरत्नाकर की भूमिका में डा० के० राजन्नशास्त्री ने भी आचार्यधर्मसूरी का समय 15वीं शताब्दी पूर्वाध भाग स्वीकार है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि साहित्य रत्नाकर के लेखक आचार्यधर्मसूरी के समय की निम्नतम सीमा 1446 ई० तथा अधिकतम 1656 ई० है। इस अन्तराल में ही धर्मसूरी अपनी प्रसिद्धि की चर्म सीमा पर रहे होंगे। अत: इनका समय 15वीं शताब्दी पूर्वार्ध स्वीकार करने में कोई आपति नहीं है।

धर्मसूरी की रामानन्द से अभिन्नता :

आचार्य धर्मसूरी ने गोविन्दानन्द अर्थात् मुकुन्दगोविन्द सरस्वती से संन्यास की दीक्षा ग्रहण की थी। तदनन्तर काशी में शंकरभाष्य पर भाष्यरत्नप्रभा नामक टीका की रचना की थी। यह उस कृति के मंगलाचरण से स्पष्ट हो जाता है।

''बन्दे चर्मकपालिकोपकरणै वैराग्यभाग्यात् परं।
नास्तीति प्रदिशन्तविधुरं श्रीकाशिकेशं शिवम्॥''

रत्नप्रभा टीका में स्वनाम कथन के अतिरिक्त स्वदीक्षागुरु का स्मरण करके उन्हीं को यह रचना समर्पित की गई है।

ब्रह्मसूत्रों पर ब्रह्मामृतवर्षिणी नामक व्याख्या भी इन्हीं की रचना है। दोनों ही व्याख्याओं के मंगलाचरणात्मक पद्यों में श्रीराम का परब्रह्म के रूप में स्मरण किया गया है।

''श्रीरामचरणद्वन्द्वमद्वन्द्वानन्दसाधनम्।
नमामि यद्रजोयोगात् पाषाणोऽपि सुखं गत:॥''

चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ बनारस से 'ब्रह्माऽमृतवर्षिणी व्याख्या सहित वेदान्तदर्शनम्' का प्रकाशन 1900 ई० को हुआ था तथा लखनऊ स्थित अखिल भारतीय संस्कृत परिषद् के पाण्डुलिपि सूचीपत्र में निम्नलिखित विवरण उपलब्ध हैं :-

''ब्रह्मसूत्रों पर ब्रह्ममृतवर्षिणी नामक वृत्ति के अध्याय और पाद पुष्पिकाओं में दो नाम पाए गए हैं। रामकिंकरवर्य और रामानन्दसरस्वती। रामकिंकरवर्य का उल्लेख गुरु मुकुन्दगोविन्द सहित हुआ है। परन्तु रामानन्द सरस्वती के उल्लेख में गुरु का वर्णन नहीं पाया जाता है।''

1. ''इति श्री परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमुकुन्दगोविन्द
श्रीचरणशिक्षितश्रीरामकिंकरवर्यकृतौ ब्रह्मसूत्रवृत्तौ
ब्रह्मऽमृतवर्षिण्यां प्रथमस्याध्यायस्य चतुर्थ पाद:॥''

2. ''इति श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्य श्री रामानन्दसरस्वती
विरचितायां ब्रह्मामृतवर्षिणी व्याख्याया ब्रह्मसूत्रवृत्तौ
चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थपाद: समाप्त:॥''

रामकिंकरवर्य दो स्थानों अध्याय पाद 4, अध्याय 2 पाद 4 (में उल्लिखित है तथा रामानन्द सरस्वती 6 स्थानों) अध्याय 2 पाद 3, अध्याय 3 पाद 1, 3, 4 अध्याय 4 पाद 3, 4) में वर्णन हुआ है। औरीयंटल इंस्टीट्यूट बड़ौदा के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची (भाग। संख्या 1421233) में क्रमश: ब्रहासूत्रवृत्ति तथा ब्रह्मामृतवर्षिणी के उल्लेख हैं। प्रथम के लेखक रामकिंकर हैं तथा दूसरी के रामानन्द सरस्वती। विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान होशियारपुर पंजाब (खण्ड-1 संख्या 3864, 6401 तथा 208) में ब्रह्मसूत्र भाष्य व्याख्या की दो प्रतियों का उल्लेख किसी रामानन्द के नाम से हुआ है। प्रस्तुत वृत्ति ब्रह्मसूत्रों और शंकरानन्द कृत दीपिका सहित पूना से प्रकाशित हो चुकी है। उसमें वृत्तिकार का नाम रामकिंकरधर्म दिया गया है। रामानन्द का उसमें कहीं भी उल्लेख नहीं हुआ है। इस वृत्ति के अध्यायों के प्रत्येक पाद के हस्तलेख अलग-अलग हैं। जिनका उल्लेख प्रस्तुत सूची में भी अलग-अलग ही हुआ है। ब्रह्मामृतवर्षिणी का लेखक रामानन्द वर्णित

हुआ है। भाष्यरत्नप्रभा का पुन: दो बार उल्लेख हुआ है। पहले गोविन्दानन्दसरस्वती को दूसरा रामानन्दसरस्वती को इसका लेखक स्वीकार किया गया है। इन्होंने ही ब्रह्मसूत्रों पर ब्रह्मामृतवर्षिणी, विवरणोपन्यास आदि टीकाओं की रचना की है। वह गोविन्दानन्द सरस्वती के शिष्य के रूप में प्रमाणित हो चुके हैं। रामानन्द ही भाष्य रत्नप्रभा के लेखक है। इसी शृंखला में एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि आचार्य धर्मसूरी ने रामानन्द के नाम से एक अन्य टीका की भी रचना की थी। यह टीका पतंजली के योगसूत्रों पर है। यह योगमणिप्रभा के नाम से विख्यात है।

इससे यह प्रमाणित होता है कि वे केवल वेदान्त के ही मर्मज्ञ नही थे। अपितु दर्शनशास्त्र के अन्य सम्प्रदायों के भी विशेषज्ञ थे। इसका मंगलाचरण भी भाष्यरत्नप्रभा, ब्रह्मामृतवर्षिणी तथा विवरणोपन्यास की भांति रामपरक है। रत्नप्रभा तथा योगमणिप्रभा का नामसाम्य भी लेखक को दोनों रचनाओं का रचयिता प्रमाणित करता है। इसकी पुष्पिका में कहा गया है–

''इति श्रीमत्परमहंसपरिब्राजकाचार्यश्रीगोविन्दानन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यश्रीरामानन्द-सरस्वतीकृतौ सांख्यप्रवचनेयोगमाणिप्रमायांकैवल्यपादश्चतुर्थ: समाप्त:॥''

प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि यदि रामानन्दसरस्वती ही धर्मसूरी हैं तो इन्होंने साहित्यरत्नाकर का उल्लेख अपनी अन्य रचनाओं में क्यों नहीं किया है। जबकि साहित्यरत्नाकर के प्रत्येक तरंग के अन्तिम पद्य में अपनी रचनाओं का उल्लेख किया है।

''धर्मान्तर्वाणिवर्यस्त्रिभुवनविदिते वाराणस्यन्वये य:
संजात: पर्वतेशच्छुभगुणगणभूर्यल्लमाम्बा सुगर्भे:।
व्याख्याविख्यातकीर्तेर्विवरणगुरुवाक्सांख्यमुख्यागमानां
तस्यालंकारशास्त्रे रघुपतिचरिते त्रित्वसंख्यस्तरङ्ग॥''

''काव्यालंकारकृष्णास्तुतिरविशतकोन्नाटकादिप्रणेतु-
स्तस्यालंकारशास्त्रे रघुपतिविभुके पंचमोऽयं तरंग:॥

भाष्यरत्नप्रभा ब्रह्मामृतवर्षिणी तथा योगमणिप्रभा का वर्णन साहित्यरत्नाकर में उपलब्ध नहीं है। यह भी सम्भव हो सकता है कि लेखक ने इनकी रचना संन्यास लेने के पश्चात् की हो। धर्मसूरी तथा रामानन्द सरस्वती में कोई भिन्नता नहीं है। अर्थात् धर्मसूरी ही रामानन्द सरस्वती हैं।

वन्दे क्लेशाद्यसंसृष्टं पुराणपुरुष हरिम्।
प्रकृत्या सीतया जुष्टयोगेशं योगदायिनम्॥
पतञ्जलिं सूत्रकृतं प्रणम्य
व्यासंमुनिं भाष्यकृतं च भक्त्या।
भाष्यानुगां योगमाणिप्रभाऽख्यां
वृत्तिं विधास्यामि यथामसीऽयाम्॥



जम्मू के रत्न

सन्त कवि स्वामी ब्रह्मानन्द तीर्थ : व्यक्तित्व और कृतित्व

❑ डॉ. सत्यपाल श्रीवत्स

डुग्गर धरती ने यद्यपि अनेक सन्त-महात्माओं को जन्म दिया है, पर अपनी मातृभाषा डोगरी में कविता के माध्यम से भक्ति और वेदान्त के प्रचार से डुग्गर के जन-जीवन को उपकृत करने वाले केवल एक ही सन्त कवि हुए हैं। वह थे स्वामी ब्रह्मानन्द तीर्थ, जिन्होंने अपनी मातृभाषा में आध्यात्मिक विषयों से ओत-प्रोत सात छोटी-बड़ी अमूल्य काव्य कृतियां रचकर जहां डोगरी काव्य-साहित्य में भक्ति-काव्य के अभाव की पूर्ति करके उसमें एक स्वर्णिम अध्याय जोड़ा वहां डुग्गर समाज का भी महान् उपकार किया।

संन्यास ग्रहण करने के बाद कई वर्षों तक तीर्थाटन तथा गुजरांवाला (पाकिस्तान) एवं बारूकी (उत्तरप्रदेश) वाली अपनी कुटिओं में अस्थायी रूप से रहकर साधना करने के बाद जब वह जम्मू में ब्राह्मण सभा के पीछे श्री अमरेश्वर महादेव के प्राङ्गण में कुटिया बनवाकर उसमें आध्यात्मिक साधनारत हो गए तो एक दिन सहसा उनके मन में अपनी मातृभाषा डोगरी में धार्मिक विषयों पर विशेषत: वेदान्त दर्शन जैसे गूढ़ विषय को सरल डोगरी भाषा की कविता के माध्यम से जन साधारण तक पहुंचाने का विचार उत्पन्न हुआ। इसलिए इन्होंने अपने उस शुभ निश्चय को अपनी प्रारम्भिक रचना में इस प्रकार अभिव्यक्त किया है-

"आदकदीमी डुग्गर साढ़ा प्हाड़ी देस खुआन्दा,
इस्सै लेई बेदान्त प्हाड़ी बोली बिच आन्दा।"

एह् बेदान्त सरल बनाया जम फंदे दे हरने गी,
इस देसा दे लोकें गित्तै भवसागर दे तरने गी।
भिक्षु हुंदे जनसेवा लेई, होर नेईं किश सरदा ऐ,
ब्रह्मनन्द ए डोगरी दे बिच अमरत बरखा करदा ऐ।

संपर्क : *47/5 रूप नगर, हाऊसिंग कालोनी, जम्मू-180 013*

भोले-भाले प्हाड़ी लोकें लष्ट-पष्ट नी जांता ऐ।
नां छल-छिद्दर गंडी बनदे सिद्धे चलना भाखा ऐ।
ए बेदान्त ऐ रमजें भरेआ, घर-घर कुन्न पुजाना सा।
सूद सुभाऽ जनता गितै सौखा कुन्न बनाना सा।

इस संदर्भ में भूतपूर्व केन्द्रीय मन्त्री और वर्तमान में राज्यसभा के सांसद डा० कर्णसिंह का यह कथन भी स्वामी जी के उपर्युक्त शुभ निश्चय की पुष्टि करता है।

Vedanta is so powerful and all pervasive a Philosophy that cuts across linguistic barriers and has left its deep impress upon every single regional language of this country, Dogri is no exception and in the work of Swami Brahmananda Tirth we find the great doctrine of Vedanta Presented in terms that can easily be understood by the common people. Indeed Swami Brahmanand is in the illustrious tradition of those saints who, in almost every part of our country, have presented in the language of the people the great ideas enshrined in our scriptures.

(Swami Brahmanad Tirth by J.C. Sathe, Published by Sahitya Akademi, 1982)

पद्म भूषण प्रो. रामनाथ शास्त्री भी स्वामी जी की अन्यतम रचना श्री ब्रह्मानन्द भजनमाला की भूमिका में स्वामी जी द्वारा वेदान्त दर्शन जैसे गूढ़ विषय को डोगरी भाषा की सरल कविता में प्रस्तुत करने के कारण प्रशंसा करते हुए लिखते हैं- इन पुस्तकों में स्वामी जी ने वेदान्त जैसे बौद्धिकता प्रधान विषय को काव्य की माधुरी में डुबोकर अत्यन्त रसमय, सरल और प्रभावपूर्ण बना दिया है।[1]

स्वामी ब्रह्मानन्द तीर्थ का जन्म 19 फरवरी 1891 ई. में जम्मू नगर से उत्तर-पश्चिम में 40 कि. मी. की दूरी पर चन्द्रभागा नदी के तट पर बसे अखनूर नगर के समीपवर्ती गांव में एक प्रसिद्ध जम्वाल राजपूत घराने में हुआ था। इनका जन्म नाम संसार सिंह था। यद्यपि प्राचीन समय में इनका वंश राज घराने से सम्बन्धित था, पर- "सब दिन होत नहीं एक समान" कहावत के अनुसार बालक संसार सिंह के जन्म के समय इनके पिता ठाकुर मियां सिंह का परिवार गरीबी का जीवन जी रहा था। उसके पास पर्याप्त ज़मीन होने पर भी उसकी राजपूती मर्यादा और स्वाभिमान उसके द्वारा स्वयं कृषि करने में बाधक बन रहा था। अतएव दूसरों द्वारा खेतीबाड़ी का काम करवाने से यथेष्ट लाभ प्राप्त नहीं हो रहा था।

---

1. *श्री ब्रह्मानन्द भजनमाला, डोगरी संस्था, जम्मू 1961 पृ. ख, ग*

ठाकुर मियां सिंह की दो पत्नियों में से उनके छः पुत्र थे। सभी की प्रारम्भिक पढ़ाई अखनूर के मिडल स्कूल में हुई थी। बालक संसार सिंह अभी पांचवी श्रेणी में पढ़ता था तो इसके पिता की अचानक मृत्यु हो जाने से पूरे परिवार पर मानो वज्रपात हो गया था, पर संसार सिंह का भाग्य अनुकूल होने के कारण उसका अपने ही स्कूल के एक वरिष्ठ मौलवी अध्यापक के साथ घनिष्ठ सम्पर्क हो गया। वह फारसी, उर्दू आदि भाषाओं का विद्वान् एवं कवि होने के साथ-साथ सूफीमत की भी गहन जानकारी रखता था। बालक संसार सिंह ने उससे पहले उर्दू और फारसी भाषाओं का बड़ी लगन से अध्ययन किया और फिर सूफीमत के बारे में पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया, जिसके प्रभाव से उसके भीतर आध्यात्मिकता के बीज धीरे-धीरे पनपने लग पड़े। इसके बाद इसने हिन्दु धर्म के बारे में भी अध्ययन करना आरम्भ कर दिया, जिससे इसके भीतर धीरे-धीरे समन्वयात्मक आध्यात्मिक ज्ञान का भंडार बढ़ता गया, पर परिवार में आर्थिक तंगी के कारण संसार सिंह को भी अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़कर अपने भाइयों के साथ जम्मू-कश्मीर राज्य की रघुप्रताप पलटन में भर्ती होकर अपनी जीविका का प्रबन्ध करना पड़ा। अपनी अधूरी शिक्षा के बारे में उन्होंने स्वयं अपनी रचना ब्रह्म संकीर्तन के मंगलाचरण में इस प्रकार कहा है-

"मता इलम नेईं पढ़ेया, कोई-कोई अक्खर जानां।"[1]

परन्तु उस समय के सरकारी नियमों के अनुसार कम पढ़ा होने पर भी संसार सिंह की नायक के रूप में पदोन्नति हो गई। इसके बाद रुड़की में सर्वेयर का प्रशिक्षण प्राप्त करने के कारण नॉन कमीशन अधिकारी के रूप में पदोन्नति तो हो गई पर साथ ही इन्हें तबदील करके गिलगित्त भी भेज दिया गया। पर वहां कुछ समय के बाद इनका अपने ही कमान अधिकारी के साथ किसी बात को लेकर भारी मतभेद हो जाने के कारण इन्होंने क्रोध में आकर अपनी वर्दी और सब कपड़े भी जला दिये और त्यागपत्र भी दे दिया और उसके तुरन्त बाद जम्मू के लिए पैदल ही चल पड़े। कईं दिनों के सफर के बाद जब थके टूटे घर पहुंचे तो अभाव और गरीबी आगे ही मुंह बायें खड़ी थी। अन्ततः विवश होकर इन्होंने पहले रणबीर प्रैस जम्मू में कलर्की की नौकरी स्वीकार कर ली और बाद में वह भी छोड़कर तवायजा विभाग में नौकर हो गए। उन्हीं दिनों इनका विवाह नूरपुर (कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश) के प्रसिद्ध राजपूत वंश में हो गया।

जैसे कि पहले ही कहा जा चुका है कि इनकी रुचि दिनानुदिन धार्मिक विषयों की ओर बढ़ रही थी जिसे इन्होंने नई नौकरी प्राप्त करके और वैवाहिक जीवन अपना लेने के बाद भी यथावत् जारी रखा और तंदनुसार जम्मू के दो प्रसिद्ध विद्वानों पं. निक्का राम शास्त्री तथा पं. श्री चन्द्र शास्त्री से संस्कृत भाषा और वेदान्त दर्शन के क्रमशः ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य,

1. *ब्रह्म संकीर्तन (डोगरी वेदान्त, सम्पादक प्रो० रामनाथ शास्त्री, रिसर्च एण्ड पब्लिकेशन डिपार्टमैंट, जम्मू-कश्मीर, 1958, पृ. 4)*

अद्वैत सिद्धि, उपनिषद् साहित्य, शंकर दिग्विजय, तथा श्रीमद्भगवदगीता आदि का छः वर्षों तक गम्भीर अध्ययन किया।

इन्होंने धार्मिक तथा दार्शनिक साहित्य का गहन अध्ययन करने के साथ-साथ यम, नियम, आसन, प्राणायाम, ध्यान, धारणा, समाधि का अभ्यास भी नियमपूर्वक आरम्भ कर दिया।

इस प्रकार हर प्रकार से आध्यात्मिक साधना में निरत हो जाने से इनकी सांसारिक विषय-भोगों से उपरति और परमात्मा की ओर लगन बढ़ने लगी। इसी बीच संयोग वश इनकी पत्नी गर्भवती हो गई तो इनके मन में एक प्रकार के पश्चाताप और अपराध बोध की प्रवृत्ति पनप उठी और पत्नी के गर्भवती होने से प्रसन्नता के स्थान पर क्रोध एवं खीज उत्पन्न हो गई और मन ही मन गर्भस्थ बच्चे और अपनी पत्नी दोनों की मृत्यु की कामना करने लगे। अन्ततः ऐसे ही हुआ भी। बच्चा होने के पांच दिनों के भीतर बिना किसी बीमारी के इनकी श्रीमती स्वर्ग सिधार गई और मातृ-विहीन बच्चा भी एक महीने की अल्पायु व्यतीत करके चल बसा। इन दोनों की एक प्रकार से प्रार्थित मृत्यु के बारे में स्वामी जी इस प्रकार कहते हैं :-

नूरपुरै दी कन्या ही इक मेरी ब्याउ जनानी सी,
अती सुशील सभाऽ ते अपने रूपै दी बी रानी सी।
छे म्हीने होए जद ब्याहे रलियै किट्ठे बौंह्दे हे,
बार-बार मिगी साधू बनने दे गै चेते औंदे से,
हर बेलै में उसदा हसमुख खिड़ेआ चेह्रा दिखदा सा।
तां बी बिना कसूर गै ओदा मरना नित-नित इछदा सा,
दो ब'रे तां बीते नां कोई रोग बमारी सी,
पंजे दिनें दा बच्चा छोड़ी ओ परलोक सधारी सी।
मौरी बाज ज्यानें गी में जेल्लै रोन्दा दिखदा सा,
ओह्दा बी में खुशी-खुशाली तौले मरना इच्छदा सा।
इक म्हीने दा होई ओड़क ओ बी कूच बजांदा ऐ,
तां उस बेलै मेरा हिरदा खुशिएं नेईं समांदा ऐ,
मनै गी लाया भजनै दे बिच जित्थीं तोड़ी सरदा सा।[1]

इस प्रकार पत्नी और पुत्र की मृत्यु के पश्चात् यद्यपि इनकी माता की इच्छानुसार इनके कुछ सम्बन्धिओं ने इन्हें फिर वैवाहिक बन्धन में बांधने के लिए इनकी सगाई भद्रवाह के एक उच्च राजपूत घराने की लड़की के साथ करवाने का प्रयत्न किया पर यह अपना दूसरा विवाह न करने के निश्चय से टस से मस नहीं हुए और श्री मद्भगवदगीता के इस कथन- ''आचरत्यात्मना श्रेयः'' (22/16) के अनुसार अपनी आत्मा की आवाज के अनुसार ही पुनः

1. *अमरत बरखा, पृ०*

गृहस्थ धर्म न अपनाने का निश्चय किया। इसके विपरीत स्वामी रामतीर्थ के प्रसिद्ध वेदान्ती शिष्य स्वामी गोविन्दानन्द तीर्थ के जम्मू आने का समाचार सुनकर उनका शिष्य बनने के लिए मन में दृढ़ निश्चय करके अपनी धार्मिक वृत्ति की माता से उसके लिए आज्ञा मांगने लगे। यद्यपि इनकी माता पहले आज्ञा देने के लिए टालमटोल करती रही पर अन्ततः इनका दृढ़ निश्चय देखकर इन्हें स्वामी गोविन्दानन्द तीर्थ का शिष्य बन कर उनसे संन्यास लेने की आज्ञा देने के लिए विवश हो गई। इस प्रकार यह स्वामी गोविन्दानन्द से विधिवत् संन्यास लेकर वेदान्त धर्म में दीक्षित हो गए। उस समय इनकी आयु 33-34 वर्ष के लगभग थी। इस बारे में स्वामी जी यूं कहते हैं-

''श्री स्वामी गोविन्दानन्द तीर्थ सतगुरू मेरे।
दीक्षित चेले रामतीर्थ स्वामी दे होए जेहड़े॥''[1]

स्वामी जी यह भी कहते हैं कि गोविन्दानन्द तीर्थ जैसे महान् गुरू से सन्यास की दीक्षा लेने का सौभाग्य मुझे तवी नदी के तट पर अठाईस लाख गायत्री मन्त्र का जाप करने के बाद ही प्राप्त हुआ था-

दौनीं बेलै तवी पर जाई गायत्री जप करदा सा,
ठाई लख जां होई ओ पूरी ईशर मेल मलाए न।
स्वामी रामतीर्थ दे चेले सुनेआं जम्मू आए न॥[2]

स्वामी गोविन्दानन्द तीर्थ से दीक्षा लेने के बाद इन्हें गुरू कृपा से जो ज्ञान प्रकाश प्राप्त हुआ उसका वर्णन इन्होंने इस प्रकार किया है-

बेरंगी दे रंगें भरियै लेई गुरूएं पचकारी ऐ।
जगत लगा फिक्का ल'ब्बन जां कन्नै बिच मारी ऐ।
अन्दरा रग-रग गेई रंगोई ने'ई पोटली घोली ऐ।
अपना आप पशानी लैता, तत्-त्वमसि दी झोली ऐ
रंग ओ मैले धोई सुट्टे द्वैत नीं नज़री पौन्दा ऐ।
मल विक्षेप बी गे घनोई, श्रुति जलै बिच न्हौंदा ऐ,
सोगें दी अग्नी शीतल होई, त्रैवे ताप नसाए न।
भेद-भरम सब कूड़ा जलेआ, नेह् मोआ ते लाए न,
मैं तूं रेआ रत्ती अन्दर, मित्थेआ जगत फकोई गेआ।
गुरूएं सच्ची होली खेड्ढी ब्रह्मानन्द रंगोई गेआ।[3]

---

1. *ब्रह्मसंकीर्तन, पृ० 4*
2. *अमरत बरखा*
3. *स्वामी ब्रह्मानन्द तीर्थ : सम्पादक - जगदीशचन्द्र साठे, साहित्य आकदेमी दिल्ली, पृ० 22-23.*

इन पंक्तियों से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि यह गुरू कृपा ही थी जिससे स्वामी जी को संत कबीर के समान सहसा ज्ञान प्राप्ति हो गई थी। आगे चलकर गुरू कृपा की महिमा का वर्णन करते हुए वह फिर कहते हैं कि गुरू कृपा रूपी चाबी से ही अज्ञान रूपी ताले खुलते हैं और ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है, यदि साधक गुरू द्वारा बतलाए हुए रास्ते से भटक जाए तो जीवात्मा चौरासी के फेर में पड़कर भटकती रहती है–

भेद बरीकी खोले व्यरथी, हत्थ गुरें दे कुंज्जीआ,
फेर चुरासी दा नेईं मुकना जे इस रस्तै खुंज्जी जाऽ॥

(ब्र. सं. पृ. - 3)

इस पद पर गुरू नानकदेव और सन्त कबीर के क्रमशः इन पदों का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है–

1. जो लख चन्दा उगवें सूरज चढ़ें हजार,
एता चानन हुन्दियां गुरू बिन घोर अंधार।

× × × ×

2. गुरू कुम्हार शिष्य कुम्भ है, गढ़ काढ़े खोट।
अन्दर हाथ सहार दे बाहर मारे चोट।

पर उनका मानना था कि गुरू कृपा और ज्ञान प्राप्ति भी तब होती है जब पुण्य समूह पिछले जन्म के पापों को नष्ट करके आगे आकर हावी हो जाते हैं। उस समय साधक की स्थिति वेदान्त सार की इस कारिका के अनुसार हो जाती है–

छिद्यन्ते हृदय ग्रन्थि भिद्यन्ते सर्व संशयाः।
नश्यन्ति सर्वकर्माणि तस्मिन् हृष्टे परावरे॥

(वे. सा.)

अर्थात् जब साधक को ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है तथा उस पर ब्रह्म परमात्मा का प्रकाश हो जाता है तब उसके हृदय की ग्रन्थियां टूट जाती है, और उसके हृदय के सारे सन्देह भी नष्ट हो जाते हैं तथा सब प्रकार के कर्म-बन्धन भी नष्ट हो जाते हैं।

वेदान्त दर्शन के इन्हीं भावों को स्वामी जी अपनी कविता के माध्यम से किञ्चित् विस्तार के साथ इस प्रकार रूपायित करते हैं–

पुन्न समूह ओ इसदे जेल्लै सनमुख आई खड़ोंदे न,
तां एह् साधक रस्तै पौंदा पिछले पाप कटोदे न।
दुनियां एह् सरांऽ बझोंदी अपने बखले लगदे न,
लम्मे पन्द सुखाले बनदे टोए-टिब्बे भजदे न।

भव तरने दी इयै नशानी जिस-जिस रमज पछांती ऐ,
नां उसगी कोई प्रेमी खिचदा नां कोई बैरी आकी ऐ।
अटल पदै दा बनेआ तारू, डोबू साथ रूड़ाए न,
पंजै बैरी करी नशाना, इक-इक करी ढाए न।[1]

स्वामी जी कहते हैं कि जब साधक ज्ञान की ऐसी स्थिति प्राप्त कर लेता है तो उसे मृत्यु का भय भी नहीं रहता है एवं हर प्रकार के कष्ट झेलकर भी वह अपनी साधना के पथ पर सतत अग्रसर रहता है-

सच्ची तांह्ग जिस अन्दर मौती शा नेईं संगदा ऐ।
सिर-सिर बाजी लाइयै खेडे, उत्तम साधक बनदा ऐ।
मौत बढ़ापा रोगें आली फाइएं शा नी डरदा ऐ (अमृतवर्षा)

अपने गुरू गोविन्दानन्द जी से सन्यास की दीक्षा लेने के बाद स्वामी जी ने भारत भर के लगभग सभी तीर्थों की यात्रा की। वहां से लौट कर इन्होंने सब से पहले गुजरांवाला (अब पाकस्तान में) एक कुटिया बनाई और वहां कुछ समय तक रहकर साधना की और वहीं रहकर इन्होंने आयुर्वेद का अभ्यास करके स्वयं बनाई हुई औषधियों से दीन-दुखी और रोगियों का उपकार भावना से इलाज करना आरम्भ कर दिया। 1947 ई. में जब देश का विभाजन हुआ तो यह घूमते-घूमते उत्तरप्रदेश के बिजनौर जिले के वारूकी नामक गांव में पहुंच गये। वह स्थान इन्हें साधना की दृष्टि से बड़ा अच्छा लगा, अतः वहां एक कुटिया बनवा कर रहने लगा पड़े, परन्तु वहां प्रायः गर्मियों के दिनों में ही अधिकतर रहा करे थे, जबकि सर्दियों में जम्मू आ जाते थे। बाद में इन्होंने अपनी जम्मू वाली कुटिया में स्थायी रूप से रहकर अपनी साधना और योगाभ्यास करने का निश्चय कर लिया।

वह सन् 1954 का समय था जब इन्होंने डोगरी भाषा में कविता रचना आरम्भ की। उस समय इनकी आयु 63 वर्ष की थी। उन दिनों इनकी कुटिया के पास ही ब्राह्मण सभा के प्राङ्गण में डोगरी संस्था समय-समय पर अपनी कवि गोष्ठियां आयोजित किया करती थी। स्वामी जी के अनुसार उन गोष्ठियों में पढ़ी जाने वाली कविताओं की इनके कानों में पड़ने वाली गूंज ने ही इनके भीतर सोये हुए कवि को जगाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। फलतः एक वर्ष के भीतर 1955 में इनकी प्रथम लघु काव्य कृति गूंगे दा गुड़ डोगरी संस्था जम्मू ने प्रकाशित की, जिसका डुग्गर के सम्पूर्ण धार्मिक समाज ने हृदय से स्वागत किया। बाद में स्वामी जी की यह रचना इनकी 287 पृष्ठों की आठ अध्यायों वाली बृहद रचना श्री ब्रह्मसंकीर्तन (डोगरी-वेदान्त) के ध्याता प्रकरण का एक भाग बन गई। 'गूंगे दा गुड़' के कई पदों पर वेदान्त और उपनिषदों जबकि कइओं पर श्रीमद्भगवदगीता और गुरूनानक देव जी

---

1. *स्वामी ब्रह्मनन्द तीर्थ : सम्पादक - जगदीश चन्द्र साठे, साहित्य अकादमी, दिल्ली पृ. 20*

की गुरूवाणी का स्पष्ट प्रभाव है। इतना ही नही इसके कई पदों पर अनेक सूफी कवियों का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। जैसे कि पहले ही कहा जा चुका है कि स्वामी जी ने वेदान्त दर्शन जैसे कठिन और शुष्क प्राय विषय को लोकोपकार की भावना से ही डोगरी भाषा में उतारने का निश्चय करके ही अपनी कविता लिखनी आरम्भ की थी, जिसमें इन्हें इनके इष्ट की कृपा से अभूत पूर्व सफलता मिली। यहां यह विचारणीय है कि कोई भी काव्य कृति उत्तम कोटि की समझी जाती है जो पाठक के हृदय पर अपनी गहरी छाप छोड़े। उसका कथ्य कुछ भी हो और उसकी आत्मारस भी चाहे श्रृंगार, वीर आदि में से कोई भी हो परन्तु उसमें कविता के यदि शेष सभी गुण विद्यमान हों तो उसमें विशेष काव्यमय चमत्कार आ जाने से उसमें हमारे अन्तरतम को स्पर्श करने की शक्ति आ जाती है। वास्तव में ऐसी रचना ही किसी भी सांस्कृतिक इतिहास में अपना चिरस्थायी स्थान बनाने की क्षमता रखती है। इस संदर्भ में जब हम स्वामी ब्रह्मानन्द की कविता पर विचार करते हैं तो निस्सन्देह कह सकते हैं कि स्वामी जी तुलसीदास, कबीर, सूरदास सूफी कवि जायसी, गुरू नानकदेव आदि की परम्परा के सन्त कवि थे।

वेदान्त दर्शन के 'अहं ब्रह्मास्मि' के भाव को सन्त कवि स्वामी ब्रह्मानन्द ने कैसे सरल ढंग से इस पद में उतारा है, विचारणीय है–

नाभी विच भरी कस्तूरी नज़र निं अन्दर कीतीआ,
मिरगें बांगू जङ्ग गलें तुप्पना उमर व्यर्थी बीती आ।
मैं मेरी दे फन्दै फसियै सूली जिन्द चढ़ाई ऐ,
पानियें बिच रौंह्दे बी मच्छी सदा र'वै तरैहाई ऐ।[1]

पर कवि कहता है कि अपने वास्तविक रूप को पहचानने के लिए साधक को कठिन साधना तो करनी ही पड़ेगी–

जको-तक्के कैसी करनां ?
झूठे भरम मसाई लै,
बनी सूरमा उठदा की नेईं ?
शस्तर सान चढ़ाई लै,
बान बवेक बरागा आले,
भरियै खूब चलांदा जा,
लोभ मोह गी करी नशाना
बारो-बारी ढांदा जा।
× × ×

---

1. *ब्रह्म संकीर्तन (ध्याता प्रकरण) पृ० 129*

जिंदे निश्चे टलदे नेइयों
उंदे मनैं तसल्ली ऐ।
× × ×
जो टुरदे सो पुजदे आए,
रसम कदीमीं चलदी ऐ।''[1]

सन्त कवि ब्रह्मानन्द नीचे उदृत पद में प्रश्नों के माध्यम से सांसारिक व्यक्ति से पूछता है कि हे मानव, तू इस जन्म से पहले कौन था ? तूं कहां से आया है ? आगे कहां जाएगा और साथ क्या ले जाएगा ? तुम मोह-माया से उठाए हुए भार को कहां फेंकोगे ? क्या तुम जानते हो कि इस संसार का स्वाभाविक रूप क्या है और ईश्वर की माया क्या है ? यह सब मिलकर एक सामूहिक विचार बनता है ? वेद भी इस विषय में विस्तृत जानकारी नहीं देते।

कुन हां तूं, आया हा कुत्थों, जाना कोह्कड़े थाह्रै गी ?
के आन्दा, के नेणां कन्नै, कुत्थै सुट्टना भारै गी ?
के इस जग दा रूप सभावक, के ईश्वर दी माया ऐ
ए सब मिली बचार खोआया वेदें पार निं पाया ऐ।[2]

कवि कहता है कि यदि साधक इन प्रश्नों का उत्तर जान ले तो उसका जन्म भी सफल हो जाता है और उसे विष्णुपद भी प्राप्त हो जाता है–

जे एदे बिच पूरा उतरै जनम सफल ए होन्दा तां,
जीन्दे जी इस देहा कन्नै विश्णु दा पद थ्होंदा तां।[3]

इस पद पर हम, श्री मदभगवदगीता के पांचवें अध्याय के इस 29 वें श्लोक का स्पष्ट प्रभाव देखते हैं :-

काम क्रोध वियुक्तानां यतीनां यत चेतसाम्।
अभितो ब्रह्म निर्वाण वर्तते विदितात्मनाम्॥

अर्थात् जो संयमी सार्धक काम क्रोध पर विजय प्राप्त कर लेते हैं, उन्हें आत्म प्रकाश हो जाता है और उन्हें सब ओर से परम गति का सन्देश प्राप्त होता है।

रूपक अलङ्कार और प्रतीकों के माध्यम से कवि परमात्मा की माया का इस पद में बड़ी खूबसूरती से वर्णन करता है। वह कहता है कि वह परमात्मा ठग बनजारे के रूप धारण करके अपने अनेक रंग बनाता हुआ कहीं अज्ञात स्थान से तारें हिलाकर चौदह लोकों

1. *स्वामी ब्रह्मानन्द तीर्थ : सम्पादक-जगदीश चन्द्र साठे, साहित्य अकादमी, दिल्ली, पृ०-56*
2. *– वही –, पृ० 130-131*
3. *– वही –, पृ० 31*

को लकड़ी की पुतलियों के समान नचाता है। वह जीवात्मा के इस मिट्टी के शरीर को सोने का दिखाकर सांसारिक लोगों का इसके प्रति मोह उत्पन्न कर देता है। जिससे ऋषि-मुनि और साधक रूपी सराफ भी इसकी माया के चक्कर में आकर कुछ भी समझ नहीं पाते हैं। वह सांसारिक विषय-भोगों में जिनके परिणाम अत्यन्त विष भरे हैं, लोगों के सामने अमृत के समान प्रस्तुत करके उनके प्रति आसक्ति उत्पन्न कर देता है :-

नमें दरें दी नगरी अंदर ठग बनजारा बसदा ऐ
मित्ती उप्पर करै मलम्मा, सुन्ना करियै दसदा ऐ।
चमक-दमक नेईं समझा औंदी, इसदे तौर न्यारे न
पार सराफें नेईं कोई पाया परखां करी-करी हारे न।
रंग बरंगे रूप बनाइयै पिच्छों तार हलान्दा ऐ,
चौदां लोक तली पर रखदा पुतली बांग नचांदा ऐ।[1]

कवि कहता है कि जब तक सांसारिक मनुष्य भोग-विलास में डूबा रहता है न ही तब तक उसे ज्ञान का प्रकाश ही होता है और न ही उसे अपनी पहचान ही हो सकती है :-

चेतना थों पिच्छें हटी जन्दा भोगें दे बिच डु'लदा ऐ।
तां अन्दरै दी जोत निं जगदी आपूं गी बी भुलदा ऐ।[2]

इस पद पर सूफी कवि हाशम के इस पद का स्पष्ट प्रभाव प्रतीत होता है-

नहीं कबूल अबादत तैंरी जब लग पाक न होवे।
आमिल खाक पवे मुल्ल तेरा जब लग साक न होवे॥

कवि ब्रह्मानन्द पति और पत्नी के प्रतीकों के माध्यम से परमात्मा और जीवात्मा के सम्बन्धों का वर्णन करता हुआ कहता है कि यदि जीवात्मा रूपी पत्नी अपने परमात्मा रूपी पति के साथ सच्चा प्यार करे उसे पूर्ण सुख की प्राप्ति होती है-

पति की आज्ञा पालन करियै जिसने प्रेम बदाया ऐ
दिन दूना ते रात चौगना नित्त नमां सुख पाया ऐ।
छन्न-गोहाण्डी सिफतां करदे प्योके हुन्दी सराहता ऐ।
सस्स ते सौह्‌रे खुशियां बुझदे इज्जत करदा नाता ऐ।[3]

---

1. *ब्र० सं० पृ०- 198*
2. *वही-, पृ०- 175*
3. *ब्र० सं० पृ०- 150*

इसी भाव को बुल्ले शाह ने इस प्रकार व्यक्त किया है-

''जेहड़ियां सौह्रे सोहनियां सोई पेके होवन
शौह जिन्हा ते माईल चढ़ सेजे सोवन।''

कवि कहता है कि वास्तव में जो लोग जीवात्मा और परमात्मा को अलग-अलग समझते हैं वे भगवान की माया द्वारा भरमाए हुए हैं और इसी कारण उनके आगे अज्ञान का पर्दा है। सचाई तो यह है कि यदि इस रहस्य को समझ लिया जाए कि जीवात्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं है तो साधक ज्ञान की अवस्था को पहुंच जाता है।

''ब्रह्म न्यारा जीवन्यारा ए सब झूठी माया ऐ,
गुप्त रहस्य जो असली चमकै, बिरलें नजरी आया ऐ।
भेद-भाव दे भाव न झूठे ए अज्ञान गै भारा ऐ,
''ब्रह्मानन्दा'' निश्चा करी लै जीव ब्रह्म नईं न्यारा ऐ।[1]

इसी भाव को अपने एक भजन के माध्यम से कवि थोड़ा दूसरे ढंग से और अधिक स्पष्ट करता हुआ कहता है-

आपूं गी अपने अन्दरा,
तूं नईं पछानेआं।
जंगलें पहाड़ें-कन्दरें,
तुपना नमानेआं।
धोखे दी इस सराईं गी
अपना बनाया।
कईं बारी इत्थों निकलेआं,
फ्ही परती आया।[2]

स्वामी ब्रह्मानन्द आगे चलकर कहते हैं कि जब साधक की आत्मा शुद्ध तथा मुक्त होकर अपना लक्ष्य प्राप्त कर लेती है तब वह संसार में आवागमन के चक्कर से तथा सभी बन्धनों से मुक्त होकर उस स्थान पर पहुंच जाती है जो स्वर्ग से भी ऊपर है-

पुज्जी गेआ पुज्जना सा जित्थें, आई गेआ औने दा थां,
मुक्की गेआ हुन औना जाना, हंस होआ उमरी दा।
लख चुरासी बन्धन मुक्के, लक्क खो'लिऐ बेही गेआ,
अमर सुखें दी इच्छा जागी, सुरग बी पिच्छें रेही गेआ।[3]

---

1. *वही - पृ०- 78*
2. *श्री ब्रह्मानन्द भजन माला, डोगरी संस्था, जम्मू, पृ०- 64*
3. *स्वामी ब्रह्मानन्द तीर्थ : सम्पादक - जगदीश चन्द्र साठे, पृ० 70*

तथा–

सागर दी थाह् लैने खातर लूना दी इक डली गेई,
मुड़ियै औना कुस भड़ुए ने उत्तै आपूं रली गेई ॥[1]

इसी भाव को भक्त कबीर इस प्रकार व्यक्त करते हैं –

लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल

स्वामी ब्रह्मानन्द सांसारिक लोगों को बड़ी सावधानी के साथ अपने सन्मार्ग पर विशेषत: आध्यात्मिक मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हुए कहते हैं कि हे राहगीरो, भूलकर भी अपने मार्ग से मत भटकना क्योंकि इस संसार में काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि शिकारिओं ने अपने-अपने जाल बिछाए हुए हैं। जो लोग इस संसार में रहकर नींद आलस आदि से प्यार करते हैं वे सन्मार्ग को भूल जाते हैं। वे यूं ही अपनी आयु व्यतीत कर देते हैं इतने में काल आकर उन्हें बांध कर उनकी पिटाई करता हुआ ले जाता है–

''उट्ठो राहिओ, रस्ते पगड़ो, पन्द दुराड़े आए न,
भुल्ला बिच्च नीं फड़की मरेओ, फान्दी जाल बछाए न।
नीन्दर पेआरी जिस-जिस कीती, बिच पलेखें पेई गेआ,
कालै लम्मा सैंख बजाया, मुश्कां कड्ढियै लेई गेआ।[2]

यह एक सुखद बात है कि अपनी आध्यात्मिक साधना में मगन रहते हुए भी स्वामी ब्रह्मानन्द का अपने समकालीन समाज के प्रति पूरी तरह उपेक्षा भाव नहीं था। डुग्गर समाज में एक ओर भुखमरी और गरीबी और दूसरी और धनाढय लोगों की विलासिता को देखकर उनका मन पूरी तरह खीज और आक्रोश से भर उठा था, इसीलिए उन्होंने गरीबों और धनिकों की विभिन्न स्थितियों की अपनी लम्बी कविता में तुलना की हुई है। कविता के कुछ अंश दृष्टव्य हैं–

बख्तावरें दै कुड़ियां जम्मन, ढोल धमक्कड़ हुंदा ऐ,
भुखें दै घर जागत जम्मै सारा ट्ब्बर रोंदा ऐ।
× × × ×
बख्ताबर जे बौह्न जोआड़ी उत्थें लंगर लगदा ऐ।
भुखे दै घर जान्नी आवै तां बी ग्राह् नेईं ल'बदा ऐ।
× × × ×

---

1. वही–, पृ० 134
2. स्वामी ब्रह्मानन्द तीर्थ : सम्पादक - जगदीश चन्द्र साठे, पृ० – 70

बख्ताबरें दी कन्न पीड़ बी सौ-सौ आई ऐ पुछदा ऐ।
भुक्खें दी भाएं जिंद बी निकलै कोल नेईं कोई ढुकदा ऐ।

इतना ही नहीं इस देश की स्वतन्त्रता के लिए महात्मा गान्धी के नेतृत्व में चलाए जा रहे स्वतन्त्रता आन्दोलन के बारे में भी वह पूरी तरह से जागरूक थे और महात्मा गान्धी के व्यक्तित्व से भी अत्यन्त प्रभावित थे। उनकी राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत एक मात्र रचना के कुछ अंश इस प्रकार हैं-

''धन्न-धन्न बुड्ढे बापू, सुत्ता देस जगाया ई,
पगड़ी चरखा चक्कर सुदर्शन, मुलख अजाद कराया ई।
केईं बारी तू जेलैं दे बिच पेइयै कैदी कट्टी,
लोक सेवा दै कारन जेल्लै कठन तपस्सेआ दस्सी।
फरंगी निश्चा तेरा दिक्खी मूल मता घबराया ई॥''

सर्व शान्ती मैन्तर दित्ता जग दी शोभा लेई,
बैरिएं जतन बत्हेरे कीते रत्ती पेश नीं गेई,
उनेंगी फौजें सनें नसाई समुन्दरें पार कराया।[1]

उपर्युक्त सर्वेक्षण से स्पष्ट हो जाता है कि स्वामी ब्रह्मानन्द तीर्थ का उद्देश्य काव्य सृजन मनोरंजन के लिए नहीं बल्कि सन्त कबीर, तुलसी, सूरदास, गुरू नानक आदि के समान ''स्वान्त:'' सुखाय था। परन्तु जब वह कहते हैं कि-

ए वेदान्त सरल बनाया जम फंदे दे हरने गी,
इस देसा दे लोकें गित्तै भवसागर दे तरने गी

तब यह तथ्य भी स्पष्ट हो जाता है कि अपने स्वान्त: सुख के साथ- साथ वह इस देश के जन-साधारण, विशेषत: डोगरी भाषी जनता की भलाई के लिए वेदान्त जैसे गूढ़ दार्शनिक ज्ञान को डोगरी कविता के माध्यम से अति सरल ढंग से उपस्थित करना चाहते थे। निस्सन्देह उन्हें अपने उद्देश्य में पूर्ण सफलता मिली। अत: स्पष्ट है कि यदि हम उनकी कविता में काव्य शास्त्र द्वारा गिनाए गए सभी गुणों को ढूंढने का प्रयत्न करें तो हमारा प्रयत्न व्यर्थ हो जाएगा, फिर भी इतना अवश्य है कि बाकी सन्त कवियों की काव्यकृतियों के समान कविता के यथावश्यक अंग एवं गुण उनकी कविता में सवत: ही आ विराजे न कि उन्हें अपनी कविता में व्यवस्थित करने के लिए स्वामी जी को कोई विशेष प्रयत्न करना पड़ा है। जगदीशचन्द्र साठे के इस कथन से हम सहमत हैं कि स्वामी जी ने अपने काव्य के लिए डुग्गर की लोक गाथाओं में प्रयुक्त होने वाले छन्द का ही अधिकतर प्रयोग किया है। इस छन्द की यह विशेषता है कि इस की दो ही

---

1. *स्वामी ब्रह्मानन्द तीर्थ, पृ०- 27-28*

पंक्तियां होती हैं और इनके वर्णों की संख्या तेरह से सोलह तक होती है। इसमें तुक के नियम की पाबन्दी भी अवश्य रहती है।[1] जहां तक अलंकारों के प्रयोग का प्रश्न है वह भी स्पष्ट है स्वामी जी ने अपनी कविता को प्राय: उपमा, रूपक, द्रष्टान्त स्वभावोक्ति तक ही सीमित रखा है, हां कहीं-कहीं श्लेष और अनुप्रास अलंकारों का भी प्रयोग किया हुआ है।

स्वामी जी की कविता के हम दो रूप देखते हैं– जहां पर वह पूर्णतया दार्शनिक विचार प्रगट करते हैं वहां काव्य पक्ष किञ्चित कमजोर दिखाई पड़ता है परन्तु जब हम उनकी कविता में वर्णनात्मक एवं भावात्मक पक्ष प्रबल देखते हैं वहां काव्यत्व प्रबल होकर चमत्कृत हो जाता है। ऐसी रचनाओं के प्रत्येक पंक्ति में जहां शब्द चित्र दिखलाई पड़ते हैं वहां हमें मुहावरें भी दिखाई पड़ते हैं और उपमा, रूपक जैसे अलंकार भी एवं प्रतीकों के प्रयोग भी सबल मिलते हैं।[2]

यद्यपि स्वामी जी ने अपनी कवितायों में ठेठ एवं सरल डोगरी भाषा का प्रयोग किया हुआ है, परन्तु जहां-जहां उन्हें गूढ़ दार्शनिक भावों को अभिव्यक्त करने के लिए संस्कृत निष्ठ एवं संस्कृत भाषा के तत्सम शब्दों को प्रयुक्त करने की आवश्यकता अनुभव हुई है। वहां इन्होंने ऐसे शब्दों का प्रयोग बेझिझक होकर किया है।

डोगरी भाषा के इस एकमात्र सन्त कवि ने 12 अक्तूबर 1962 को प्रात: काल 3 बजे अन्तिम सांस लेकर अपने नश्वर शरीर को छोड़ कर परमधाम को प्रस्थान किया था।

	स्वामी जी की रचनाएं	प्रकाशन
1.	गूंगे दा गुड़– 1955	(डोगरी संस्था, जम्मू)
2.	मानसरोवर– 1957	(डोगरी संस्था, जम्मू)
3.	गुप्त गंगा– 1958	(डोगरी संस्था, जम्मू)
4.	अमृत वर्षा– 1959	(डोगरी संस्था, जम्मू)
5.	डोगरी भजन माला – 1961	(डोगरी संस्था, जम्मू)
6.	ब्रह्म संकीर्तन – 1958	(Research and Publication Deptt. J&K (Govt. Srinagar)
7.	भावनी स्रोत्रम्– 1961	किसी भक्त द्वारा

---

1. *स्वामी ब्रह्मानन्द तीर्थ : सम्पादक - जगदीश चन्द्र साठे, पृ०– 51*
2. *- वही - पृ०– 57-68*



संगीताचार्य श्री जियालाल 'वसन्त'

(24 मई 1913 ई.— 21 दिस. 1985 ई.)

❑ प्रो. रामनाथ शास्त्री

डोगरा धरती को गौरव प्रदान करने वाले उन सपूतों की संख्या हाथ की उंगलियों पर गिनी जा सकती है, जिन्होंने समाज-सेवा के क्षेत्र अथवा कला-साहित्य संस्कृति के क्षेत्र में चिर-स्मरणीय योगदान दिया है। ऐसे चिर-स्मरणीय लोगों में जिन चंद बलिदानी व्यक्तियों को डोगरा जाति की पीढ़ियां, लोक-नायक मान कर पूजती आईं हैं, वे हैं (1) अमर किसान (शहीद) बावा जित्तो, (2) सरपंच- शिरोमणी, दाता रणपत और (3) पंजाब के एकमात्र सिक्ख महाराजा रंजीत सिंह के आधिपत्य से डोगरा धरती को मुक्त करवाने के लिए 12 बरस तक गुरील्ला जंग करके, वैष्णों देवी के त्रिकूट पर्वत के सांझी छत्त नाम के स्थान पर आत्म बलिदान देने वाले शेर-डुग्गर, मियां डीडो जमवाल।* इन पूजनीय लोक-नायकों के बाद जिस बलिदानी सूरमे का स्मरण आते ही, जन-इतिहास के जिज्ञासु डोगरों के सिर गर्व से श्रद्धावनत हो जाते हैं, वह था शहीद, कप्तान गंधर्व सिंह मन्हास, जिसने जम्मू- प्रांत की दक्षिणी सीमा-रेखा पर बसे भिम्बर नगर के निवासियों को, सशस्त्र पाकिस्तानी 'रेडर्स' के घेरे से मुक्ति दिलाने के प्रयास में आत्म बलिदान दिया था। यह बलिदान 25 अक्तूबर, 1947 ई. के दिन हुआ था।

डुग्गर को गौरवान्वित करने वाले समाज-सेवियों में सरदार बुधसिंह, लाला हंसराज, लाला ईश्वरदास मींगी, मास्टर श्री रामनाथ प्रभाकर, उधमपुर के पं. दयाराम शास्त्री और लाला मुल्कराज सराफ आदि आदि।

मुझे अपनी एक 'फाईल' में स्व० श्री गणेशदास शर्मा की, अंग्रेजी में लिखी एक चिट्ठी मिली।

यह चिट्ठी उन्होंने सन् 1997 ई. में लिखी थी। इसमें उन्होंने लिखा था : "Jiya lal Vasant, who appeared on the music horizon as a bright star & did Duggar Proud; hailed from Akhnoor. He was essentially a self-made man."

स्व. गणेशदास शर्मा, रियासत के सूचना विभाग में Secretary Information के ऊँचे पद पर काम करके रिटायर हुए थे। वे भी अखनूर के ही रहने वाले थे। स्कूली पढ़ाई

---

* *"डुग्गर दे लोक-नायक" लेखक प्रो.रामनाथ शास्त्री, प्रकाशक : डोगरी संस्था, जम्मू (मूल्य 25 रू.)*

संपर्क : *35 कर्णनगर, जम्मू।*

में श्री जियालाल 'वसन्त' उनसे एक क्लास आगे थे। दोनों गहरे दोस्त थे। मैं श्री गणेश दास के साथ, एक बार 1997 ई. में अखनूर गया था। अखनूर में गणेशदास जी ने, जिया लाल वसन्त के परिवार के दो मकान मुझे दिखाए। एक मकान के आंगन से, सीढ़ियाँ चढ़कर, उन्होंने मुझे वह कमरा भी दिखाया, जहाँ वे दोनों पढ़ा करते थे। अब वे दोनों मकान बिक चुके हैं।

मेरा विश्वास है कि कुदरत जिन व्यक्तियों से उनके जीवन में कुछ विशेष काम लेना चाहती है, उनकी निगहबानी वह उनके बचपन से ही शुरू कर देती है। श्री जिया लाल 'वसन्त' भी उसी श्रेणी के एक विशिष्ट व्यक्ति थे।

श्री 'वसन्त' का जन्म, पंजाब यूनिवर्सिटी से मेट्रिक पास करने के उनके सर्टीफिकेट के अनुसार 24 मई, 1913 ई. को अखनूर में हुआ था। उनके पिता लाला जगन्नाथ नागपाल, रियासत के महकमा माल में गिर्दावर के पद पर काम कर रहे थे। लाला जगन्नाथ नागपाल को, अपनी नौकरी के सिलसिले में, जम्मू तथा श्रीनगर की अलग-अलग जगहों में जाना पड़ा था। वे गिर्दावर के पद पर काम करते हुए जहाँ-जहाँ भी रहे, उनका परिवार उनके साथ रहा। इसलिए जियालाल की आठवीं श्रेणी तक की पढ़ाई, अखनूर से बाहिर के स्कूलों में ही हुई। लाला जगन्नाथ को संगीत में थोड़ी बहुत रुचि ज़रूर रही थी। इसी लिए रियासत के जिस शहर या कस्बे में, अपनी नौकरी के सिलसिले में वे जाते, वहां गाने-बजाने वाले लोगों से उनका मेल-जोल हो जाता। हारमोनियम, तबला बगैरा साज़ नगपाल के अपने घर में भी थे। जिया लाल 'वसन्त' को संगीत के यह संस्कार, इन्हीं घरेलू महफ़िलों से प्राप्त हुए थे।

सन् 1930 ई० में लाला जगन्नाथ नागपाल तबदील होकर, जिला जम्मू की किसी तहसील में आ गए थे। उन दिनों उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था। ज्यादा बीमार हो जाने के कारण वे छुट्टी लेकर अपने घर, अख़नूर में आ गए।

सन् 1930 ई० में दीपों के त्योहार दीवाली के दीपकों से अखनूर कस्बे में सभी घरों में दीपों की कतारें जगमगा उठी। लक्ष्मी का पूजन हुआ। मिठाई का लेन-देन हुआ लेकिन अखनूर के एक घर में इस शुभ पर्व की खुशियों भरी रात, कुहराम में डूबी रही। लाला जगन्नाथ नागपाल का दीवाली की उसी शाम को प्राणान्त हो गया। जिया लाल 'वसन्त' उस समय 16वें या 17वें बरस में थे। उन्होंने आठवीं का इम्तिहान पास कर लिया था। लाला जगन्नाथ जी के जीवन-काल में, जिस परिवार के लोग आराम का जीवन भोग रहे थे, उनका देहान्त होते ही वह खुशहाली स्वप्न हो गई। परिवार, बेसहारा हो गया। जियालाल चिन्ता में पड़ गए कि अपनी दो बहनों तथा माता का गुज़ारा अब कैसे होगा ? उनकी स्कूली पढ़ाई का क्या होगा ? उनकी बड़ी बहन की शादी लाला जगन्नाथ के जीवन-काल में हो चुकी थी।

जिया लाल ने निश्चय किया कि उसे अखनूर में किसी दुकान पर बैठ कर कोई छोटा-मोटा धन्धा कर लेना चाहिए। आखिर उसने तस्वीरों को 'फ्रेम' लगाने और बेचने का काम शुरू किया। श्री गणेश दास शर्मा ने मुझे बताया कि जिया लाल ने शिवजी के एक कार्ड-साईज़ चित्र में फ्रेम लगाकर मुझे दिया था। मैंने उस चित्र को अपने गांधीनगर वाले मकान में बने छोटे से पूजागृह में रख लिया। वह चित्र अब भी मेरी पूजा में है। उन्हीं दिनों, अखनूर का. आठवीं श्रेणी तक का वह पुराना मिडिल स्कूल, महाराजा हरिसिंह जी के आदेश से हाई स्कूल बना दिया गया। कुछ दोस्तों तथा रिश्तेदारों के बार-बार के तकाज़ों को मानकर, जियालाल ने भी, तस्वीरों का धंधा छोड़कर स्कूल की नौंवी जमात में दाखिला ले लिया और टूटा हुआ पढ़ाई का सिलसिला दुबारा शुरू कर दिया।

मैं जियालाल के बारे में जानकारी प्राप्त करने दुबारा, या शायद तीसरी बार अखनूर गया तो मुझे कुछ नई बातों की जानकारी मिली जैसे, सन् 1931 तथा सन् 1932 में, जब जियालाल नौवीं तथा दसवीं जमात का विद्यार्थी था, तभी उसके मन में संगीत तथा साहित्य (उर्दू शायरी करने) के बीज अंकुरित होने लगे। एक तरफ वे कस्बे (अखनूर) की सांस्कृतिक गतिविधियों में रुचि लेने लगे तथा दूसरी ओर स्कूल की नौवीं श्रेणी में पढ़ाई का सिलसिला जारी करके उनके मन में शायरी करने की भी लगन पैदा हुई। स्कूल में, अंग्रेजी गणित तथा 'जनरल-नालेज' ये तीन विषय सब विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य होते थे। इनके अतिरिक्त दो विषय विद्यार्थी अपनी इच्छा से चुनता था। श्री वसन्त ने उर्दू तथा फारसी का चयन किया। संयोग की बात थी कि उन्हें उर्दू पढ़ाने वाले अध्यापक स्वयं भी उर्दू-शायरी में दिलचस्पी रखते थे।

श्री 'वसन्त' में उर्दू शायरी करने का रुझान देखकर उर्दू के उस्ताद ने उनके इस शौक को विकसित करने में मदद की। 'वसन्त' जो भी गज़ल या नज़्म लिखता, उसके उस्ताद उसकी 'इस्लाह' करते। जो दो बरस, श्री वसन्त ने हाई स्कूल में गुजारे, उस अर्से में उसने अपनी शायरी के शौक को जीवित रखा। श्री वसन्त के इस शौक के बारे में हम इस लेख के अन्त में उनकी छपी हुई कविता पुस्तकों की संक्षेप में चर्चा करेंगे। लेकिन यहाँ, उनके 'उपनाम' (तख़ल्लुस) की ओर संकेत करना मैं ज़रूरी समझता हूँ। उनके पिता (श्री जगन्नाथ नागपाल) का देहान्त हुए लगभग एक बरस से भी कम समय हुआ था। वसन्त का परिवार अभी भी उसी शोक के साये में जी रहा था। शायद इसी बात को ध्यान में रखते हुए, अखनूर के हाई स्कूल के उस उर्दू-अध्यापक ने जियालाल के लिए 'वसन्त' उपनाम चुना. जो उस समय बड़ी ही समझदारी और दूर-अन्देशी की बात थी। 'वसन्त', पतझड़ के 'अवसान' का सन्देश लाती है। संगीत और शायरी, जीवन की वसन्त ऋतु के सदा-बहार फूल हैं। लगता है कि जियालाल के जीवन में भी ऋतु-परिवर्तन होने लगा था।

अखनूर में उन्हीं दिनों, एक पशु-चिकित्सक, कहीं से तबदील होकर आए थे। नाम था- डॉ० फिरोज़दीन। वह संगीत का शौक रखते थे। हारमोनियम बजाने में बड़े माहिर थे।

अखनूर की रामलीला क्लब में जिया लाल वसन्त की डॉ० फिरोजदीन से मुलाकात हो गई। डॉ० फिरोज़दीन ने उनको अपना 'सहायक' बना लिया। इन दोनों के कारण अखनूर की रामलीला क्लब की गतिविधियों में संगठनात्मक मज़बूती आती गई। अखनूर के ही एक ठा. अजीत सिंह जियालाल के एक सहपाठी, अनिरुद्धसिंह के बड़े भाई थे। उन्हें तबला बजाने का शौक था। ठाकुर अजीत सिंह, दरया चिनाब के किनारे, 'जिया पोता' नाम के घाट पर जाकर तबला बजाने का अभ्यास करते थे। जियालाल भी छुट्टी वाले दिन या कभी स्कूली पढ़ाई के बाद दरया पर अजीत सिंह जी के पास जा बैठता। अजीत सिंह 17-18 बरस के जिया लाल की यह रुचि देखकर प्रसन्न हुए और आहिस्ता उन दोनों में गुरु-शिष्य का सम्बन्ध विकसित हुआ। जियालाल ठा० साहब से तबला बजाने की शिक्षा प्राप्त करने लगा। फुर्सत मिलते ही वह दुकान खोल कर तस्वीरों को फ्रेम करने का अपना धंधा भी चलाने का यत्न करता।

सन् 1932 का पहला चरण बीतते ही, दसवीं श्रेणी के इम्तिहान का समय आ गया। जियालाल 'वसन्त' और उसका सहपाठी अनिरुद्धसिंह दोनों अखनूर शहर से जम्मू में आ गए, क्योंकि परीक्षा का केन्द्र जम्मू में ही था। दोनों सहपाठी शहर की 'हरि-टाकी' में रात को सिनेमा 'शो' देखने का आनन्द भी लेते और साथ ही सवेरे परीक्षा भी देते। परिणाम निकला तो दोनों पास हो गए। अनिरुद्ध ने मुझे अखनूर की एक बैठक में बतलाया था कि वह इम्तिहान में 432 नम्बर लेकर पास हुआ और जिया लाल को 431 नम्बर मिले थे।

दसवीं की परीक्षा पास कर लेने के बाद जियालाल 'वसन्त' की जीवन यात्रा का यह **पहला पड़ाव** पूरा हुआ। अखनूर कस्बे के साथ जैसे जियालाल का सम्बन्ध पूरी तरह खत्म हो गया। आगे पढ़ने के लिए उसने श्रीनगर के एस. पी. कालेज में एफ. ए की क्लास में दाखिला ले लिया, जहां उसने उर्दू और फारसी के साथ 'फिलासफ़ी' का एक नया मजमून भी अपनी पढ़ाई में शामिल कर लिया। चौथा मज़मून अंग्रेजी था जो सभी विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य था। इसके अगले वर्ष, अखनूर का उसका साथी श्री गणेशदास शर्मा भी मेट्रिक की परीक्षा पास करके श्रीनगर के उसी कालेज में दाखिल हो गया। श्रीनगर में इन दोनों साथियों को अपने किन्हीं संबंधियों के साथ रहने की सुविधा मिल गई थी। जियालाल की रिहायश श्रीनगर में अमीराकदल नाम के मुहल्ले में थी। इसी मुहल्ले में सड़क के किनारे पर प्रताप-भवन नाम की एक दोमंज़ली पक्की इमारत है। इस इमारत में नाटक खेलने तथा गाने-बजाने के प्रोग्राम अक्सर होते रहते थे। जियालाल भी अखनूर के कस्बे से इन दोनों कलाओं के संस्कार लेकर श्रीनगर के कालेज में दाखिल हुआ था। उसे श्रीनगर में इन प्रोग्रामों का चलन देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

सन् 1933 ई० में जिया लाल का विवाह पश्चिमी पंजाब के वज़ीराबाद नाम के शहर में करवा दिया गया। परिणामस्वरूप उसकी कालेज की पढ़ाई को समुचित ढंग से चलाने के

लिए जितनी दिलचस्पी और समय की अपेक्षा थी, उसमें बाधा पड़ी। लेकिन संगीत में अपनी रुचि के कारण, जियालाल ने कई वाद्य यंत्रों की महारत हासिल कर ली थी। इन वाद्य यंत्रों में प्रमुख थे तबला, हारमोनियम, सितार और वायलिन।

संगीताचार्य श्री भातखंडे के लिखे, शास्त्रीय संगीत के प्रसिद्ध ग्रंथ मंगवा कर वह संगीत का अभ्यास करता रहा। ये ग्रंथ ही उसे शास्त्रीय संगीत सिखाने वाले, उसके पहले गुरु बने। आहिस्ता-आहिस्ता उसे अपनी एफ. ए. की पढ़ाई बीच में ही छोड़ देनी पड़ी। जीवन का कठिन-कठोर संघर्ष उसके सामने था, लेकिन उसके मन में, इसी संगीत के सहारे अपने जीवन के संघर्ष से जूझने का भरोसा पैदा हो रहा था।

यह उसके जीवन का दूसरा पड़ाव था। गर्मियों के छः महीने, जब तक सरकारी दफ्तर श्रीनगर में रहते, जियालाल अमीराकदल के आस-पास किराए का मकान लेकर अपने परिवार की रिहायश का जुगाड़ करते तथा वहां आर्य-समाज जैसी किसी संस्था के भवन में संगीत सिखाने का केन्द्र चलाते। गरीब बच्चों को श्री वसन्त निःशुल्क संगीत सिखाते थे लेकिन सम्पन्न तथा समर्थ शिष्यों से 6-7 रुपये मासिक शुल्क लेते। इसी तरह सर्दियों के छः महीने जम्मू में आकर, मकान किराए पर लेकर परिवार की रिहायश का प्रबंध करते तथा 'सिराजों की ढक्की' के सिरे पर श्री लक्ष्मी-नारायण के मंदिर के आस-पास किसी दुकान पर बना हुआ एक चौबारा किराए पर लेकर संगीत की सिखलाई का केन्द्र चालू कर लेते। महीने भर में नियमित रूप से संगीत सिखाने से होने वाली लगभग 50-60 रूपए की आय से उनके परिवार की गुजर-बसर भी हो जाती तथा मकान और संगीत केन्द्र के किराए की देनदारी भी पूरी हो जाती। आश्चर्य की बात यह है कि जियालाल जैसे संगीत सिखलाने के काम में, भरोसे के शिक्षक बनकर उभरने लगे, वैसे ही उनके मन में गरीब लेकिन संगीत सीखने योग्य बच्चों की तलाश करने और उन्हें संगीत की निशुल्क शिक्षा देने की लालसा भी बलवती होती गई। श्रीनगर में तो उन्हें ऐसे होनहार निर्धन बच्चे मिलना कुछ दुर्लभ प्रतीत हुआ, लेकिन जम्मू में ऐसे कईं बच्चे उनके संपर्क में आए। जम्मू के संगीत केन्द्र में आकर, संगीत की प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करने वाले ऐसे चार बच्चों की मुझे भी जानकारी मिली जिन्हें, उन बच्चों के माता-पिता की अनुमति लेकर, श्री वसन्त अपने साथ श्रीनगर ले जाते। उन्हें अपने साथ रखते। उन्हें वहां सरकारी स्कूल में दाखिल करवा देते और शाम को अपने संगीत केन्द्र में उन्हें संगीत की शिक्षा देते। अपने बच्चों की तरह उनको खाने-पीने, पढ़ने-लिखने तथा सोने-बैठने की सुविधा प्रदान करते। मुझे श्री वसन्त के इन शिष्यों से मिलने की बड़ी उत्सुकता थी।

श्री वसन्त के ऐसे तीन शिष्यों से मेरा बड़ा निकट का संपर्क भी रहा है। इनमें एक थे इन्द्र गोयल, जिन्होंने श्री वसन्त से सितार-वादन की शिक्षा ली थी। बड़े होकर यही सितार वादन ड़नकी जीवन-चर्या का साधन बना। वे मुम्बई की फिल्मी दुनिया में चले गए और वहां किसी ऑर्केस्ट्रा ग्रुप में सितारवादक के रूप में काम करते रहे।

दूसरे शिशु कलाकार थे श्री जगदीश शर्मा। जगदीश शर्मा ने बड़े होकर संगीत में एम. ए. पास किया और जम्मू में, लड़कियों के सरकारी कालेज में संगीत के अध्यापक नियुक्त हुए। उन्होंने नौकरी में रहते, संगीत के विषय में पी.एच.डी. की उपाधि भी प्राप्त की। अपने बेटों को भी उन्होंने संगीत की शिक्षा दी। कालेज की नौकरी से रिटायर होकर, उन्होंने लड़के-लड़कियों के लिए अपने घर पर एक संगीत-शिक्षा केन्द्र खोला और सफलतापूर्वक उसका संचालन किया। अपने गुरु श्री जियालाल 'वसन्त' जी की प्रौढ़ अवस्था का एक बड़ा चित्र, उनके कमरे में सदा मौजूद रहा है।

श्री वसन्त के इसी तरह के तीसरे शिष्य थे, श्री बोधराज शर्मा, जो बाल्यकाल में तबला बजाने का अभ्यास करते थे। बी. ए. की परीक्षा पास करके वे रेडियो स्टेशन जम्मू में नौकर हो गए। तथा उन्नति की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए, स्टेशन डॉयरेक्टर के पद पर आसीन रह कर रेडियो स्टेशन की सेवा से निवृत्त हुए।

श्री वसन्त से, जम्मू-कश्मीर राज्य में जिन लोगों ने संगीत के किसी पहलू में शिक्षा प्राप्त की उनकी सूची खासी लम्बी है।

जियालाल के जीवन-संघर्ष के इस दूसरे पड़ाव में जम्मू तथा श्रीनगर में संगीत की सेवा करते हुए श्री वसन्त को 12 बरस हो गए थे। अब दोनों जगहों पर खाते-पीते घरानों की लड़कियाँ भी श्री वसन्त से सितार, सरोद, वायलिन आदि वाद्य-यंत्र (साज़) सीखती थीं। श्रीनगर में रियासत के कुछ बड़े अधिकारी भी श्री वसन्त से संगीत की शिक्षा लेते रहे हैं। इनमें एक थे श्रीनगर प्रान्त के गवर्नर श्री महाराज कृष्ण और दूसरे थे श्रीनगर के प्रसिद्ध डाक्टर श्री गवाशलाल।

सन् 1947 ई० के अक्तूबर महीने के तीसरे सप्ताह में पाकिस्तानी हाकिमों ने 7-8 हज़ार सशस्त्र कबायलियों को, श्रीनगर पर अधिकार करने के लिए भेजा।

इसी वर्ष, 15 अगस्त तक भारतवर्ष की बाकी सभी रियासतों ने भारत या पाकिस्तान में विलय का फैसला कर लिया था, लेकिन जम्मू-कश्मीर ही एकमात्र ऐसी रियासत थी जो इस बात का फैसला अभी तक नहीं कर सकी थी। हमारी रियासत के लिए अक्तूबर 1947 ई० का यह महीना, इन्हीं घटनाओं और उनसे पैदा होने वाली पेचीदगियों के कारण, ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त गंभीर समय था। इस गंभीर स्थिति के बारे में यहां विस्तार से चर्चा करने का अवसर नहीं है।

श्री जियालाल वसन्त सन् 1947 ई० के अक्तूबर महीने में श्रीनगर में ही थे। सरकारी कार्यालयों में काम करने वाले मुलाज़मों के सैंकड़ों परिवार भी श्रीनगर में थे। व्यापारी लोग तथा सैलानी लोग भी काफी बड़ी संख्या में उस समय वहां थे। कबायली रेडर्स, लूट-मार करते हुए श्रीनगर शहर को घेरने के लिए आगे बढ़ रहे थे।

आखिर 26 अक्तूबर की शाम को महा० हरिसिंह ने, जम्मू में पहुंचकर, विलय के डाकुमैंट पर हस्ताक्षर कर दिए और 27 अक्तूबर की सुबह, भारतीय सेना के जवानों को लेकर फौजी हवाई जहाज़ श्रीनगर के हवाई अड्डे पर उतरना शुरू हो गये।

श्रीनगर में उस समय, वहां से सुरक्षित निकलने के लिए व्याकुल कई हज़ार नागरिक, कबायलियों के विरुद्ध लड़ने और उन्हें अपनी धरती से खदेड़ने के लिए उत्सुक भारतीय सैनिकों के लिए परेशानी का कारण बनने लगे। इसलिए फैसला हुआ कि फौजी हवाई जहाज श्रीनगर हवाई अड्डे पर सैनिकों को उतार कर जब वापस जाने लगें तो श्रीनगर में फंसे परिवारों को निःशुल्क दिल्ली तक ले जाएं। जियालाल वसन्त भी अपने परिवार-जनों के साथ इसी तरह एक फौजी हवाई जहाज़ में दिल्ली आ गए।

इस तरह उनके जीवन-संघर्ष का **तीसरा** पड़ाव दिल्ली में शुरू हुआ।

दिल्ली में किराए का मकान मिल जाने से उन्हें वहां कुछ राहत नसीब हुई और फिर शुरू हुआ जीवन का संघर्ष और अपने टूटे हुए सपने को दुबारा साकार करने का प्रयत्न। आहिस्ता-आहिस्ता दिल्ली के 'दरयागंज' मुहल्ले में, जहां वह सपरिवार रहते थे, वहीं एक कमरा किराए पर लेकर उन्होंने संगीत की शिक्षा देने का शुभारंभ किया। कविता लिखने का जुनून भी वे निभा रहे थे। एक गिर्दावर पिता का, लाड-प्यार में पला लड़का, सन् 1930 की दीवाली के दिन से लेकर 1950 ई. तक, एक ही जुनून, एक ही लग्न को सीने में संभाले हुए वक्त के तूफ़ानी उतार-चढ़ावों में से निकलता, कहाँ से कहाँ आ पहुँचा था! दिल्ली में भी श्री वसन्त ने संगीत और कविता के दो दीपकों को जलाए रखा। दिल्ली में उसके दोस्तों, प्रशंसकों का एक घेरा भी बनता जा रहा था। दिल्ली में उन्हें, आल इंडिया रेडियों में संगीत-निर्देशक के तौर पर काम करने का मौका भी मिल गया।

1952 ई. के मध्य में उनका दूसरा कविता-संग्रह **'महफिल'** दिल्ली से ही प्रकाशित हुआ। उनकी पहली उर्दू कविता की किताब **'नय्या'** सन् 1946 ई. में लाहौर से छपी थी। छः बरस के बाद यह उनका दूसरा कविता-संग्रह दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में हिन्दी के 51 गीत पहले भाग में, मंझले भाग में पंजाबी भाषा में लिखे 26 गीत और आखिरी हिस्से में उर्दू जबान में लिखी 26 गज़लें शामिल हैं। तीनों जबानों की रचनाएँ अपनी अपनी मखसूस लिपियों में छापी गई हैं। और इन तीनों हिस्सों के दीवाचे (भूमिकाएं), उन जबानों के नामवर अदीबों ने लिखे हैं, जैसे 'उर्दू' में लिखी गज़लों का दीवाचा : उर्दू के उस समय के मशहूर शायर पंडित हरिचन्द 'अख्तर' ने, पंजाबी गीतों का दीवाचा, पंजाबी की नामवर शायरा सुश्री अमृता प्रीतम ने और हिन्दी गीतों की भूमिका श्री सत्यदेव शर्मा ने तथा आर्शीवाद के कुछ शब्द, हिन्दी के प्रसिद्ध कवि और नाटककार श्री उद्यशंकर भट्ट ने लिखे हैं। जियालाल दिल्ली में लगभग सात बरस तक रहे, लेकिन

लगता है कि दिल्ली उन्हें बांध नहीं सकी। उनकी रूह जिस सकून की तलाश में थी, वह उन्हें दिल्ली में नसीब नहीं हुआ। इसीलिए वह अपने स्थाई घौंसले के लिए किसी निकुंज की खोज में 1955-56 ई. में बम्बई में आ गए। बम्बई के वातावरण की टोह लेने के लिए वे पहले अकेले ही बम्बई आए। उनकी छोटी बेटी सुश्री प्रेम वसन्त ने एक पत्र में मुझे लिखा :

"He came to Bombay for a concert and decided to make Bombay his home. His main source of help there, was Dr. S.S. Nishat, his childhood friend and who was then Trade Agent of the J&K State there.

It took him almost two years, to rent a falt at Mahim, so that he could get his family there with him. He shifted to Yogeshwari first and then to Bandra in 1960 A.D."

जियालाल 'वसन्त' की इच्छा थी कि उन्हें मुम्बई के फिल्मी जगत में संगीत-निर्देशन का कोई मौका मिल जाए। लेकिन ऐसा कोई अवसर उन्हें वहां नहीं मिला।

मैं समझता हूं कि संगीत सिखाने की उनकी प्रतिबद्धता के लिए यह अच्छा ही हुआ। उन्होंने अनेकों बच्चों को संगीत सीखाने के क्षेत्र में वहां भी जो उपलब्धियां प्राप्त कीं उनके सम्बन्ध में एक ही प्रसंग का, मैं यहां हवाला देना चाहता हूं :-

21 अक्तूबर, सन् 1975 ई. के दिन, बांद्रा स्थित उनके **'वसन्त संगीत निकेतन'** का वार्षिक उत्सव था। उन्होंने इसमें महाराष्ट्र प्रदेश के चार विशिष्ट व्यक्ति आमंत्रित किए थे। वे थे- श्री एस. बी. चवान, सुश्री कुसुम ताई, वी. एस. पागे (Chairman Maharashtra Legislative Council) और Shree Vishanji Lakhamsi ये चारों महानुभाव समारोह में शामिल होने पधारे। समारोह के मुख्य अतिथि, श्री महाराष्ट्र के तत्कालीन मुख्य मंत्री, श्री S.B. Chavan ने समारोह के अन्त में अपनी प्रतिक्रिया इन शब्दों में व्यक्त की थी :- आज से पहले, इस संगीत-संस्थान के प्रिंसिपल साहब से मेरी मुलाकात कभी नहीं हुई। मैं आज भी इसी इरादे से यहाँ आया था कि 10-15 मिनट बैठकर वापिस चला जाऊंगा, लेकिन बच्चों ने यहां जिस प्रकार का प्रोग्राम पेश किया है, उसे देख कर और सुन कर मैं जाने की बात ही भूल गया। मुझे यह बात बहुत अच्छी लगी की निकेतन के ये नन्हें कलाकार सिर्फ अच्छा गाते ही नहीं, वाद्य-यंत्रों, तबला, सितार आदि के बजाने में भी वैसे ही कुशल हैं। इसका सारा श्रेय, इनके शिक्षक श्री जियालाल 'वसन्त' को जाता है। श्री 'वसन्त' जी यहां के म्युनिसिपल स्कूलों में जाते हैं और संगीत सीखने की योग्यता रखने वाले बच्चों को ढूंढ लाते हैं और यहां निकेतन में उन्हें 'फ्री' शिक्षा देते हैं। यहां गरीब बच्चों से कोई फीस नहीं ली जाती। प्रोग्राम इतने अच्छे ढंग से पेश करने के लिए मैं बच्चों को भी मुबारकबाद देता हूं। यदि ये बच्चे किसी पर्दे के पीछे बैठकर अपना वादन प्रस्तुत

करते तो श्रोता यही कहते की कोई उस्ताद या बड़ा कलाकार वाद्य बजा रहा है। मैं एक बार फिर प्रिंसिपल साहब को मुबारकबाद देता हूं। भगवान से मेरी प्रार्थना रहेगी की हमारे समाज के बच्चों की प्रतिभा को वे इसी प्रकार उभारते रहें। आप पहले आदमी हैं जिन्होंने बच्चों की प्रतिभा को एक जगह जमा किया है और उन्हें सही ढंग से ढालने की सफल कोशिश की है।''

श्री वसन्त को जिस तरह के वातावरण की ज़रूरत थी वह उन्हें यहाँ मिल गया था। उनके जीवन का सपना साकार होने लगा था। सुरेश वाडकर जैसा प्रसिद्ध पार्श्व-गायक इसी वसन्त संगीत निकेतन में तराशा गया कलाकार है। वसन्त जी के शिष्यों की संख्या सैंकड़ों में है जिनमें से कई इस समय रेडियो, दूरदर्शन और फिल्म-जगत में खासा योगदान दे रहे हैं।

मुम्बई में साधना का यह सफर तय करते हुए श्री जियालाल 'वसन्त' का तीसरा कविता-संग्रह **'पतवार'** सन् 1957 ई. में छपा। यह गीत-संग्रह वसन्त जी ने वहां, अपने बाल शिष्यों को ध्यान में रखकर प्रकाशित किया था। ये सभी गीत हिन्दी भाषा में रचे गये थे। किताब के पहले आधे भाग में 50 हिन्दी गीत दिए गए हैं तथा किताब के दूसरे आधे भाग में इन गीतों की स्वर-लिपि दी गई है।

इन तीन प्रकाशित कविता-संग्रहों के अलावा श्री वसन्त ने 1985 ई. तक, (जिस वर्ष उनका देहान्त हुआ) उर्दू की लगभग 100-150 गज़लें तथा बाल-कलाकारों के लिए 'रिमझिम' तथा 'संगच्छध्वम्' (आओ, मिलकर चलें) दो शीर्षकों के अंतर्गत लगभग 60-65 गीत, उनकी स्वर-लिपियों के साथ, हस्तलेख के रूप में छोड़े थे। इनमें से उनके हिन्दी गीतों का संग्रह सन् 1991 ई. में छपा लेकिन उनकी उर्दू गज़लों का एक दीवान 'असासा' नाम से अक्तूबर 1986 ई. में देवनागरी लिपि में प्रकाशित किया गया था।

इसके अतिरिक्त 'वसन्त' जी की बेटी सुश्री प्रेम वसन्त के एक पत्र के द्वारा मुझे सूचित किया था कि 'इन प्रकाशित पांच पुस्तकों के अलावा श्री वसन्त जी की लिखी लगभग पंद्रह पांडुलिपियें छपने के लिए तैयार हैं, जो अभी छपी नहीं हैं।' इन सभी पांडुलिपियों का संबंध भारतीय शास्त्रीय-संगीत परम्परा से है।

आशा है कि श्री 'वसन्त' जी की बेटी, सुश्री प्रेम वसन्त तथा उनके बेटे तुल्य शिष्य, सुरेश वाडकर, के पुरुषार्थ से ये पांडुलिपियें भी छप जाएंगी।

स्व० जियालाल वसन्त का 72 वर्ष की आयु में, मुम्बई में ही निधन हुआ था। जुहू रोड, मुम्बई (P.C. 400049) में एक भव्य चार मंज़िला भवन तैयार किया गया है जो उस साधक की स्मृति को चिरकाल तक कायम रखेगा। भवन का नाम है :

''आचार्य जियालाल 'वसन्त' संगीत निकेतन''

इस भवन का उद्‌घाटन समारोह, 1 मई, 1993 ई. के दिन महाराष्ट्र के उस समय के मुख्यमंत्री **श्री शरद पवार** के हाथों हुआ था।

स्व० श्री जियालाल वसन्त की स्मृति में, अर्पित अपनी इस श्रद्धांजलि के अन्त में, बम्बई में उनके मित्र, फिल्मी-जगत के प्रसिद्ध म्यूज़िक डॉयरेक्टर, गीतकार तथा गायक, प्रज्ञाचक्षु श्री रवीन्द्र जैन द्वारा दी गई, एक कवितामयी श्रद्धांजलि को उद्धृत करता हूं। यह कविता श्री जियालाल 'वसन्त' के देहावसान के एक वर्ष बाद प्रकाशित की गई उनकी उर्दू गज़लों के संग्रह असासा के शुरू में दी गई है। यह उर्दू गज़ल-संग्रह, स्व. कवि की इच्छानुसार देवनागरी लिपि में प्रकाशित हुआ है।

इस संग्रह का संकलन-संपादन किया है 'फ़ौक जामी' साहब ने, जिनका लिखा तीन पन्नों का एक खूबसूरत 'तआरुफ' भी किताब के शुरू में छपा है।

श्री रविन्द्र जैन की कविता का उन्वान (शीर्षक) है।

नग्मों का पुजारी

अखनूर में था जन्मा, नग्मों का ये पुजारी,
बन कर 'वसन्त' महका, नग्मों का ये पुजारी।
गुरु दीनानाथ जी से रागों का भेद जाना,
संगीत का यह आशिक, साहित्य का दीवाना,
था रक्स का भी शैदा, नग्मों का यह पुजारी।
चलता था साथ लेकर ये सोज़ो-साज़ दोनों,
थे इसकी ज़िन्दगी में नाज़ो-नियाज़ दोनों,
दोनों से खेलता था, नग्मों का यह पुजारी।
जीवन बना लिया था संगीत का निकेतन,
ये बालकों में बालक, था बालकों को अर्पण,
ममता का एक पुतला, नग्मों का यह पुजारी।
नि:शुल्क ज़िन्दगी भर, अनमोल ज्ञान बांटा,
बच्चे बुला बुलाकर, अपना मकान बांटा।
उनमें रहेगा ज़िन्दा, नग्मों का यह पुजारी॥

रवीन्द्र जैन



रचनाओं के माध्यम से सदा अमर रहेंगे हरिवंश राय बच्चन

❑ सुषमा रानी

'ऐसा चिर पतझड़ आएगा, कोयल न कुहुक फिर पाएगी।
बुलबुल न अंधेरे में गा-गा जीवन की ज्योति जगाएगी॥
तब शुष्क हमारे कंठों का उद्‌गार न जाने क्या होगा।
इस पार प्रिय मधु है तुम हो, उस पार न जाने क्या होगा॥'

सीधे सरल शब्दों को कविता के पात्र में डाल कर साहित्य रसिकों को 'काव्य रस' चखाने वाले हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि डा० हरिवंश राय बच्चन के निधन के बाद हिन्दी साहित्य का एक सूर्य अस्त हो गया।

डॉ० हरिवंशराय 'बच्चन' आधुनिक हिंदी कविता के शलाका पुरुष थे। उन्होंने हिंदी कविता के आकाश को इंद्रधनुषी रंगों से भर दिया। जब वे हजारों श्रोताओं की भीड़ में 'मधुशाला' के छंद गाते थे तब संपूर्ण वातावरण रसमय हो उठता था। छायावाद, रहस्यवाद और प्रगतिवाद के साथ बच्चन हालावाद हिन्दी साहित्य के इतिहास में अपने आप दर्ज हो गया।

प्रखर छायावाद और आधुनिक प्रगतिवाद के प्रमुख स्तंभ माने जाने वाले डा० बच्चन के निधन के साथ ही करीब पांच दशक तक वही कविता की एक अलग धारा भले ही रुक गयी हो लेकिन वह अपनी रचनाओं के माध्यम से सदा अमर रहेंगें।

डा० हरिवंश राय बच्चन का जन्म 27 नवंबर, 1907 को प्रयाग के पास अमोढ़ा गांव में हुआ था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा सरकारी पाठशाला, कायस्थ पाठशाला और बाद की पढ़ाई गवर्नमेंट कालेज इलाहाबाद और काशी हिंदू विशविद्यालय में हुई थी।

वह 1941 से 52 तक इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के प्रवक्ता रहे। उन्होंने 1952 से 54 तक इंग्लैंड में रहकर कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में डब्लयू बी यीट्स के काम पर शोध कर पी०एच०डी० की डिग्री प्राप्त की और यह उपलब्धि हासिल करने वाले वह पहले भारतीय रहे।

कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में अंग्रेज़ी साहित्य में डाक्टरेट की उपाधि लेने के बाद उन्होंने हिन्दी को भारतीय जन की आत्मा की भाषा मानते हुए उसी में साहित्य सृजन का फैसला किया और आजीवन हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने में लगे रहे।

संपर्क : एम-128, प्लाट नं. 29 रामकृष्णा विहार,. पटपड़गंज, दिल्ली-93

कैम्ब्रिज से लौट कर उन्होंने एक वर्ष बाद आकाशवाणी के इलाहाबाद केन्द्र में काम किया। वह 16 वर्षों तक दिल्ली में रहे और बाद में दो वर्ष तक विदेश मंत्रालय में हिन्दी विशेषज्ञ के पद पर रहे। हिन्दी के इस आधुनिक गीतकार को राज्यसभा में उन्हें छ: वर्ष के लिए विशेष सदस्य के रूप में मनोनीत किया गया था।

वर्ष 1972 से 1982 तक वह अपने दोनों पुत्रों अमिताभ और अजिताभ के पास दिल्ली और मुम्बई में रहते थे। बाद में वह दिल्ली चले गये और गुलमोहर पार्क में 'सोपान' में रहने लगे।

बचपन से ही लोक संगीत की धुनों पर इनका मन थिरकता रहा। सन् 1932 में इनका पहला काव्य संग्रह 'तेरा हार' प्रकाशित हुआ। सन् 1935 में 'मधुशाला' के प्रकाशन के साथ ही ये हिन्दी जगत में चर्चित हो गए। उस जमाने में प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी, दिनकर, रामकुमार वर्मा आदि कवियों के चतुर्दिक फैले प्रभाव क्षेत्र में स्वयं की पहचान बनाना दुष्कर कार्य था। लेकिन 'मधुशाला' के बाद 'मधुबाला' और 'मधुकलश' के लगातार प्रकाशन ने 'बच्चन' की धूम मचा दी। उनकी कल्पनाशीलता, मस्ती और भावानुभूति की सरसता ने उन्हें काव्य जगत में विशिष्ट बना दिया। इन्हीं तीन संकलनों के आधार पर हिन्दी काव्य में 'हालावाद' की प्रतिष्ठा हुई। 'बच्चन' की कविता के सर्वप्रिय होने का कारण उसकी संवेदना-सिक्त जीवंत भाषा सर्वग्राह्य शैली में अपनी बात कह जाने का एक प्यारा-सा अंदाज रहा। यही 'अंदाजे बयां' उनकी 'मधुशाला' की खूबसूरती भी है। 'बच्चन' की कविता में संवेदना की अनुभूतिमूलक सच्चाई झलकती है। उन्होंने समाज में व्याप्त विषमता, अभाव और पीड़ा को पूरी शिद्दत के साथ सटीक बिंबो में अभिव्यक्त किया। यथार्थ जीवन की व्यथा को अपने प्राणों में समाया है :-

''क्षीण, क्षुद्र, क्षणभंगुर, दुर्बल
मानव मिट्टी का प्याला।
भरी हुई है जिसके अंदर
कटु-मधु जीवन की हाला॥
मृत्यु बनी है निदर्य साकी
अपने शत-शत कर फैला।
काल प्रबल है पीने वाला
संसृति है यह मधुशाला।''

डा० बच्चन किसी साहित्य आंदोलन से नहीं जुड़े थे और हर विधा को अपनाया। यश चोपड़ा की फिल्म 'सिलसिला' का सुपरहिट गीत 'रंग बरसे भीगे चुनर वाली रंग बरसे' उनके रूमानी कलम की कहानी कहता है। उन्होंने अग्निपथ सहित कुछ फिल्मों के लिए भी गीत लिखे।

डा० बच्चन को उनकी कृति 'दो चट्टानें' पर 1988 में हिंदी कविता का साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। बिड़ला फाउंडेशन ने उनकी आत्मकथा के लिए उन्हें सरस्वती सम्मान

दिया था और 1988 में ही उन्हें 'सोवियतलैंड नेहरू' और एफो एशियाई सम्मेलन ने उन्हें साहित्य वाचस्पति पुरस्कार दिया। राष्ट्रपति ने पदम भूषण पुरस्कार से सम्मानित किया।

दशकों तक हिन्दी की सेवा करने वाले डा० बच्चन को उनकी आत्मकथा पर 1991 में के० के० बिड़ला फाउंडेशन की ओर से तीन लाख रुपये का सबसे बड़ा 'सरस्वती सम्मान' पुरस्कार दिया गया।

डा० बच्चन ने अपने काव्यकाल के आरम्भ से 1983 तक कई श्रेष्ठ कविताएँ लिखीं। उनके समग्र कविता संग्रह में मधुशाला से लेकर मधुकलश, निशा निमंत्रण, आकुल अंतर, बंगाल का काल, खादी के फूल, धार के इधर-उधर, त्रिभंगिमा, बहुत दिन बीते, जल समेटा, निशा निमंत्रण प्रणय पत्रिका, एकांत संगीत, मिलन यामिनी, बुध व नाचघर, सूत की माला, आरती और अंगारे आदि प्रमुख हैं।

'बच्चन' की कविता नितांत वैयक्तिक है। वह 'आत्मस्फूर्त' और 'आत्मकेन्द्रित' है। उन्होंने हालावाद के द्वारा व्यक्ति के जीवन की सारी नीरसता को स्वीकार करते हुए भी उससे मुंह मोड़ने के बजाय सभी बुराइयों और कमियों के बावजूद जो कुछ मधुर और आनंदप्रद है उसे अपनाने की प्रेरणा दी। उर्दू शायरों ने 'वाइज' और वजा, मस्जिद और मजहब, कयामत और उकबा की परवाह न करके 'दुनियां से रंगो बू' को निकटता से बार-बार देखने और उसका आस्वादन करने का आमन्त्रण दिया है। 'बच्चन' के हालावाद का दर्शन भी यही है।

'अपने युग में सबको अद्भुत
ज्ञात हुआ अपना प्याला।
फिर भी वृद्धों से जब पूछा,
एक यही उत्तर पाया,
अब न रहे वे पीने वाले
अब न रही वह मधुशाला॥'

बच्चन ने बांटने वाली दीवारों को हमेशा नकारा। भाषा, धर्म, सम्प्रदाय और उपासना पद्धतियों के कारण जो कठमुल्लापन पैदा होता है, उसके खिलाफ है बच्चन की 'मधुशाला।'

मुसलमान और हिन्दु दो हैं
एक मगर उनका प्याला
एक मगर उनका मदिरालय
एक मगर उनकी हाला
दोनों रहते एक न जब तक
मस्जिद-मंदिर. में जाते
बैर बढ़ाते मस्जिद-मंदिर
मेल कराती मधुशाला॥

बच्चन की कविता स्वच्छंदवादी थी और कवि भी स्वच्छंद था यह कहने के लिए-

'धर्मग्रंथ सब जला चुकी है
मंदिर-मस्जिद-गिरजे चुका जो मतवाला
पंडित मोमिन पादरियों के
फंदों को जो काट चुका
कर सकती है आज स्वागत
मेरी मधुशाला॥'

अमिताभ बच्चन ने अपने एक लेख में लिखा है कि मेरे पिता एक गरीब निम्न मध्यवर्गीय परिवार से आए हैं। एक पत्रकार के रूप में उनकी तनख्वाह उस समय 25 रुपए थी। उन्होंने ज़मीन पर बैठकर लालटेन की रोशनी में पढ़ाई की, लेकिन इससे कभी उनकी लगन पर असर नहीं पड़ा। उन्होंने अपना पूरा जीवन पढ़ने-लिखने में ही लगाया। सख्त अनुशासन और किसी भी काम के पूरी तत्परता से पूरा करना उनके व्यक्तित्व का ऐसा पहलू रहा जिसका प्रभाव सिर्फ मुझे पर नहीं बल्कि पूरे परिवार पर रहा है। अपने पिता को जहां मैंने हमेशा एक बेहद क्षमतावान, प्रतिबद्ध और ज्ञान से परिपूर्ण शख्शियत के रूप में पाया। आरंभ से ही उनके व्यक्तित्व का गुण रहा कि जब भी वे कोई हाथ में काम लेते तो अपनी पूरी लगन के साथ उसे निडर होकर पूरा करते। उनकी यह निडरता उनके लेखन में भी देखने को मिलती है और उनके सोच में भी। यही कारण है कि उन्होंने साहित्य में एक नई धारा का प्रवर्तन किया। हालावाद जिसमें उन्होंने यह समझाया कि मधुशाला के माध्यम से जीवन को किस तरह समझा जा सकता है। बच्चन के गीत ही नहीं, बल्कि कविताएं भी मर्मस्पर्शी हैं। वे सहज, सरल और मन को छूने वाली कविताएं हैं। उनकी एक ऐसी ही मार्मिक कविता है जो जीवन में आशावाद को जगाती है :-

'जो बीत गई सो बात गई
जीवन में एक सितारा था
माना तो बेहद प्यारा था
वो छूट गया तो छूट गया
अंबर के आनन को देखा
कितने इसके तारे टूटे
कितने इसके प्यारे छूटे पर
पूछो टूटे तारों से
कब अंबर शोक मनाता है॥'

अपने युवाकाल में बच्चनजी पढ़ाई छोड़कर राष्ट्रीय आंदोलन में कूद पड़े थे। फिर स्कूल में अध्यापक रहे। असाध्य रोग से 1937 में प्रथम पत्नी (श्यामा) के निधन व अभाव और उपेक्षा की पीड़ा ने उन्हें अन्तर्मुखी बना दिया। उस समय के मूड़ की कविताएँ 'निशा

निमन्त्रण' (1938), 'आकुल अंतर' तथा 'एकांत संगीत' में संकलित है। सन् 1942 में वि० वि० की प्राध्यापिकी से हालत सुधरी। 'नीड का निर्माण फिर-फिर' जैसी रचनाएँ इस नए मोड़ को रेखांकित करती हैं। उन्होंने कहा भी है।

'जो बसे हैं वे उजड़ते हैं
प्रकृति के जड़ नियम से।
पर किसी उजड़े हुए को फिर बसाना कब मना है ?'

इन्हीं दिनों सामाजिक यथार्थ से रूबरू होते हुए उन्होंने लिखा है।

'चिता की राख में
मांगती सिंदूर दुनिया॥'

कवि बच्चन की कविता यात्रा में तीन धाराएं स्पष्ट दिखीं, पहली धारा स्वच्छंदतावादी, व्यक्तिवादी धारा जिसमें यौवन, उल्लास, पिपासा, प्रणय, वेदना, मस्ती और सुखापभोग की कामना प्रमुख रही। मधुशाला, मधुबाला और मधुकलश में यही स्वर प्रमुख रहा। दूसरी धारा में विषाद और पीड़ा की प्रचुरता बनी। 'एकांत-संगीता', 'निशा-निमंत्रण' और 'आकुल अंतर' (तीनों सन् 1940 के पूर्व की हैं) में अवसादपूर्ण गीत हैं। पीड़ा, अनास्था, अस्थिरता, एकांकतिकता, मानसिक द्वंद्व तथा आत्मावलोकन आदि के साथ कुछ 'शोकगीत' भी इनमें शामिल हुए। इसके पश्चात् एक मोड़ इसी अंतरंगता में आया जो इन्हें पुन: जीवन और सौंदर्य की आसक्ति की ओर खींच लाया। 'सतरंगिनी' (1945), 'हलाहल' और 'मिलन यामिनी' (1950) में कवि अपनी सहज स्वाभाविक मानसिकता के स्तर पर नजर आया। इसीलिए 'प्रणय-पत्रिका' में प्रेम और मांसल सौंदर्य की मादकता पुन: छलकने लगी।

तीसरी धारा में कवि ने सामाजिक यथार्थ से जुड़कर जनसामान्य की टूटती हुई आस्थाओं, मूल्यों के विघटन और हताशा को स्वर देने का प्रयास किया। लोकगीतों की शैली तथा मुक्त छंद को भी अपनाया।

'कवियों में सौम्य पंत', क्या भूलूं क्या याद करूं ? 'नीड़ का निर्माण फिर-फिर', 'जाल समेटा', 'खैयाम की मधुशाला', 'ओथेलो', 'मैक बैथ' (तीनों अनुवाद) प्रारम्भिक रचनायें भाग 1, 2, 3 आदि उनकी रचनाधर्मिता के विविध आयामों को रूपायित करती हैं।

बच्चन जी ने हिन्दी साहित्य के कोष को अमूल्य मणियों से समृद्ध किया। भाषा और शैली तथा 'कथ्य' और 'शिल्प' की दृष्टि से बच्चन जी ने हिन्दी संसार को नए क्षितिज दिए। बहुआयामी व्यक्तित्व और प्रतिभा से सार्थक सफलता के जो कीर्तिमान उन्होंने स्थापित किए, वे अविस्मरणीय हैं।



मौत का गायक शिवकुमार बटालवी

❑ डॉ० कीर्ति केसर

जोबन रुत्ते जो वी मरदा
फुल्ल बणे जां तारा।
जोबन रुत्ते आशिक मरदे
जां कोई करमांवाला
जां ओह् मरन कि जिनां लिखाए
हिजर धुरों विच करमां
हिजर तुसांदा असां मुबारक
वाल बहिश्तां खड़ना (ले जाना)
असां तां जोबन रुत्ते मरना।

यौवन की रुत्त में मरने का चाव प्रकट करने वाला यह गीत लिखकर पंजाबी के इस दास्त्योवस्की ने बहुत शोहरत कमाई थी। ''विरहा तू सुल्तान'' से ख्याति की सीढ़ियां चढ़ते-चढ़ते मौत का स्वपनिल मकड़जाल शिव बटालवी ने अपने इर्द-गिर्द खुद ही बुन लिया था। यारों दोस्तों ने भी इस जाल को पक्का करने में अपनी पूरी ताकत झोंक दी थी। शिव ने इस से बाहर निकलने की बहुत कोशिश भी की परन्तु जो तस्वीर एक बार बन चुकी थी उसे मिटाना इतना आसान नहीं था। शिव ने 'रूपवती' के दिसंबर 1972 के अंक में छपे एक इन्टरव्यू में कहा–

'ठीक है यारो! मेरी पहली कविताएं मेरी निजी पीड़ा की अभिव्यक्ति थीं पर मैं उस वक्त गलत रास्ते पर चल पड़ा था। अभी अबोध था यार पर अब तो बहुत आगे आ गया हूँ... सियाना हो गया हूं..........।'

इस प्रतिभाशाली कवि की ये सारी दलीलें और सफाइयां भी उसके लिए अनुकूल परिणाम नहीं दे पाई। मौत को विषय बनाकर लिखे गीत उसकी आत्मपीड़ा में आनंद लेने वाली आत्मघाती मनोवृत्ति के प्रतीक बन गए। काव्य पारखियों ने भी 'इसे आत्मकेंद्रित और काव्य के रचनात्मक मूल्य से रहित काव्य' का विशेषण देना शुरू कर दिया क्योंकि उसकी काव्य-रचना का यह ऐसा दौर था जिसमें शिव ने अपने गीतों, और गज़लों में मौत जैसी डरावनी चीज़ को 'ग्लैमराइज़' करना शुरू कर दिया था। उसे ऐसे रसीले अंदाज़ में प्रस्तुत किया कि उसमें सुख का भ्रम होने लगा था। इसमें अस्तित्ववादी प्रभाव नहीं बल्कि शिव की अपनी मन:स्थिति ही ज्यादा प्रभावशाली दिखाई देती है :–

असां किस ख़ातिर हुण जीणां
साडे मुख दा मैला चानण

संपर्क : 1086 एल० ई० गोबिंदगढ़, जालंधर– 144 001

किस चुम्मणा किस पीणां
इस मिट्टी विच निसदिन
साडे कोसे रंग गवाचण
इस मिट्टी दे पाटे दिल नूं
कदों किसे ने सीणां
असां किस ख़ातिर हुण जीणां

लगता है शिव इन दिनों भीड़ में, दोस्तों की जुंडली में और अपने अनगिनत चाहने वालों के बीच रहकर भी अपने ही अकेलेपन से पीड़ित था। वह दास्तोवस्की के किसी पात्र की तरह अजनबी, अपनी नियति के साथ समझौता करता हुआ अपनी स्वनिर्मित दुनिया में, अपने साथ ज्यादा रहने लगा था। गीतों, गज़लों, नज़्मों के रास्ते ही वह अपने आपे से बाहर निकलता था। आत्मपीड़ा और पीड़न में वह सुख पाने लगा था। मौत के साथ बातें करता हुआ वह अन्त: मुखी हो गया था। जिन्दगी से हताश, निराश अन्दर ही अन्दर कहीं टूटता हुआ :-

नीं जिंदे मैं कल्ह नहीं रहणां
अज राती असां घुट बाहां विच
गीतां दा इक चुम्मण लैणां
समें दे पंछी दाणां-दाणां
साहवां दा चुग लैणा
नी जिंदे मैं कल्ह नहीं रहणां।

शोहरत की ऊंची इमारत के नीचे दब गया था शिव। इतनी छोटी सी आयु में साहित्य अकादमी का पुरस्कार, पिछड़े हुए इलाके के छोटे से गांव में बीता हुआ उसका मासूम-सा बचपन और दूसरी तरफ अमीरों- अमीरजादियों की क़दरदानियां और मेहरबानियां। सबके केन्द्र में प्रेयसी का दुखद वियोग। एक तरफ साहित्य अकादमी का पुरस्कार दूसरी तरफ आलोचक का तिरस्कार। इन सारे अन्त: विरोधों की बीच शिव बंट गया था। विलक्षण प्रतिभा पर अन्दर कहीं रोगी आत्मा और घायल इच्छाशक्ति का द्वन्द्व भी उसकी इस मानसिकता में शामिल था। अपने भीतर के बौनेपन को मारता वह खुद मौत की तरफ चल पड़ा था। अन्त:करण का शून्य उसे भीतर खींच लेता उसी शून्य में उसे मौत का बिंब दिखाई देता। इस पर दोस्तों की बेइमानियों और दुश्मनों की साजिशों का दबाव भी जले पर नमक का काम करता। उसकी आत्मा की पीड़ा कई गीतों में प्रकट हुई हैं :-

लक्खां मेरे गीत सुण लए
मेरा दुख तां किसे वी नां जाणियां
लक्खां मेरा सीस चुम्म गए
पर मुखड़ा न किसे वी पहचाणियां

अपने दोस्तों से शिव को जितनी ही आशा थी वह उसी के शब्दों में 'जब मैं मरूंगा बलवंत। पांच कुत्ते भी न आएंगे। अमृता एक कविता लिख देगी और तू कहेगा, मर गया बेचारा कोबरा सांप।' संबंधों से निकली इस तरह की पीड़ा को उसने अपनी कई रचनाओं में अभिव्यक्त किया है। 'अपणी सालगिरह ते' कविता का एक अंश :

विरहण जिंद मेरी ने सहियो
कोह इक होर मुकाया नीं
पत्थर मील मौत दा नज़रीं
अजे वी न आया नीं
डोहल इतर मेरी जुल्फीं मैनूं
लै चल्लो कबरां वल्ले नीं
खवरे (शायद) भूत-भुताणे ही वण
चंबड़ जावण हाणीं नीं।

अर्थात् मेरी विरही जिंदगी ने एक कोस का सफ़र और खत्म कर लिया है। पर मौत का मील पत्थर अभी दिखाई नहीं दिया अब मेरी जुल्फों में इत्र डाल कर मुझे कब्रों की तरफ ले चलो शायद भूत-प्रेत ही मेरे मित्र बनकर मुझ से लिपट जाएं।

अपने दोस्तों से लिपट कर मिलने की इच्छा शिव के अवचेतन में पड़ी संबंधों के सुख की कामना की ही सूचक है। मरने की मानसिकता में से भी वांछित कामना मनफी नही होती। दरअसल मौत की कामना विकल्प नहीं है, निराशा की चरमसीमा है, इंतहा है।

प्रेम की विरहा गाते-गाते शायद शिव को जीवन की अर्थहीनता और व्यर्थता का अहसास भी होने लगा था और उसकी सार्थकता के दरवाज़े भी उसने अपने ही हाथों से बंद कर लिए थे। यह उसकी संवेदनशीलता की चरमसीमा थी। यह भावनात्मक रुग्णता उसके कईं गीतों और गज़लों में रचनाओं की मांसल शक्ति बन गई है। इसमें अद्‌भुत अपील (संचरणशीलता) है, विलक्षण सौंदर्य है। शरीर के रोग और शराब ने उसे दिनोंदिन मौत के क़रीब पहुंचाना शुरू कर दिया था। पर वह उससे डरता नहीं था बल्कि उसके साथ रोमांस का सुख लेने लगा था 'चरित्रहीन' कविता का एक अंश :

उम्र दे पंछी वरेह (साल)
दिन सवा कु नौ हज़ार
किहड़े मकसद वास्ते
आखिर ने दिते गुज़ार
किहड़े मकसद वास्ते
ऐने कु सूरज खालए
सिर ऐनियां रातां दा भार

शिव का 'मकसद' ही कहीं खो गया था। तभी उसे उम्र के दिन-सालों के पंछी व्यर्थ उड़ गए लगते थे। उम्र भर की रातें उसे बोझ लगने लगीं थी। उसकी चेतना पर एक तरफ चरित्रहीन का बोझ था तो दूसरी तरफ अपने गुमनाम दिनों और यारों की जलील हंसी की चुभन थी और आस-पास ख़ौफ़नाक आंतरिक उदासी का मरुस्थल था। वह अपनी उदासी से बातें करने लगता :-

हां मेरा अब खून तक उदास था
हां मेरा अब मांस तक उदास था
चारों तरफ सोगवार सोच थी
या यारों की ज़लील हंसी थी
सफ़र था, रेत थी, खामोशी थी
ख़लाअ, उफ़क था और सूरज था
और अपने पैरों के निशानों के सिवा कुछ न था। (अनुवाद)

शिव पर आरोप है कि प्रेम की असफलता के कारण ही वह मौत के गीत गाता था पर यह पूरा सच नहीं है। उसकी निराशा में अनचाही ज़िन्दगी जीने की बेबसी भी शामिल थी कुछ शराब ने भी उसकी सोच को पंगु बना दिया था। बेशक इन कारणों ने शिव को अपने अकेलेपन में कोई साथी ढूंढने को प्रेरित किया होगा और उसने साथिन ढूंढ ली 'मौत' जो न ज़लील हंसी हंसे, न बेइमानी करे, न मेहरबानी करे और न ही भ्रम या संदेह पैदा करे। उसके चुनाव से 'मौत' भी काव्यमयी हो गई। पंजाबी के मूर्धन्य आलोचक डा० विश्वनाथ तिवाड़ी कविता में मौत के इस विलक्षण वर्णन के बारे में लिखते हैं :-

'मौत के विषय में शिव ने जितना भरपूर मौलिक और प्रभावशाली लिखा इतना शायद और किसी ने भी नहीं लिखा। शिव की कविता में वारिसशाह वाली पंजाबियत है और गुरुवाणी जैसा संगीत है पर पंजाबी कविता के समूचे इतिहास में शिव बटालवी जैसा मौत का शायर कोई नहीं है।'

सच ही कहा है डा० विश्वनाथ तिवाड़ी ने क्योंकि इतने सुरीले सुरों और जीवंत शब्दों में मौत को सिर्फ शिव पुकार सकता है जैसे कि वह मौत न होकर कोई 'हीर' या 'सोहणी' हो। उसे कब्र में मां की गोद जैसी ठंडक महसूस होती है। अपने एक शेयर में शिव कहता है कि दुपहर की धूप मेरे सिर से ढलने लगी है अर्थात् चढ़ती उम्र का जोश उतरने लगा है और कब्र मेरा इस तरह इंतजार कर रही है जैसे मां अपने पुत्र का इंतजार करती है :-

सिखर दुपहरे सिर तों मेरे
ढल चल्लिया परछावां
कबरां उड़ीक दियां ज्यों पुतरां नू मांवां।

शिव के इस रोमांस के जाल को केवल पाश ही छेद पाया था। उसके समकालीनों के लिए यह ईर्ष्या का विषय था।



साक्षात्कार

अनुवाद एक तरह का पुनर्सृजन है

डॉ० शिबन कृष्ण रैणा से डॉ० जीवन सिंह की अनुवाद की प्रक्रिया एवं अनुवादकला पर विस्तृत बातचीत।

प्रश्न : दूसरे कर्मों के इतिहास की तरह अनुवाद-कर्म का भी एक विश्व-इतिहास है। इस इतिहास पर कुछ प्रकाश डालिए ?

उत्तर : मेरी समझ में जब से मनुष्य ने वाणी का व्यवहार करना सीखा, अनुवाद की संकल्पना तभी से साकार हुई। दूसरे शब्दों में कहें तो भाषा के आविष्कार के बाद जब मनुष्य समाज का विकास-विस्तार होता चला गया और सम्पर्कों एवं आदान-प्रदान की प्रक्रिया को और अधिक फैलाने की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी, तो अनुवाद ने जन्म लिया। ध्यान से देखें तो अपनी बात को कहने के लिए मनुष्य अपने भावों/विचारों को स्वभाषा में रूपांतरित/अनुवादित ही तो करता है। किसी भी तरह के वाणी-व्यवहार में वक्ता के मस्तिष्क में हर स्तर पर अनुवाद प्रक्रिया चलती रहती है। प्रारम्भ में अनुवाद की परम्परा निश्चित रूप से मौखिक ही रही होगी। इतिहास साक्षी है कि प्राचीनकाल में जब एक राजा दूसरे राजा पर आक्रमण करने को निकलता था, तब अपने साथ ऐसे लोगों को भी साथ लेकर चलता था जो उसके लिए दुभाषिए का काम करते थे। यह अनुवाद का आदिम रूप था। साहित्यिक गतिविधि के रूप में अनुवाद को बहुत बाद में महत्त्व मिला। दरअसल, अनुवाद के शलाका पुरुष वे यात्री रहे हैं, जिन्होंने देशाटन के निमित्त विभिन्न देशों की यात्राएं की और जहां-जहां वे गए, वहां-वहां की भाषाएं सीखकर उन्होंने वहां के श्रेष्ठ ग्रन्थों का अपनी-अपनी भाषाओं में अनुवाद किया। चौथी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में फाहियान नामक एक चीनी यात्री ने 25 वर्षों तक भारत में रहकर संस्कृत भाषा व्याकरण, साहित्य, इतिहास, दर्शनशास्त्र आदि का अध्ययन किया और अनेक ग्रन्थों की प्रतिलिपियां तैयार की। चीन लौटकर उसने इनमें से कई ग्रन्थों का चीनी में अनुवाद किया। संस्कृत से किए गये ये चीनी अनुवाद जापान में छठी-सातवीं शताब्दी में पहुंचे और वहां जापानी में भी उनका अनुवाद हुआ।

प्राचीनकाल से लेकर अब तक अनुवाद ने कई मंज़िलें तय की हैं। यह सच है कि आधुनिककाल में अनुवाद को जो गति मिली है, वह अभूतपूर्व है। मगर यह भी उतना ही सत्य है कि अनुवाद की आवश्यकता हर युग में, हर काल में तथा हर स्थान पर अनुभव की

सम्पर्क : *1/14 अरावली विहार, अलवर, राजस्थान-301 001*

जाती रही है। विश्व में द्रुत गति से हो रहे विज्ञान और तकनालजी तथा साहित्य, धर्म-दर्शन, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र आदि ज्ञान-विज्ञानों में विकास ने अनुवाद की आवश्यकता को बहुत अधिक बढ़ा दिया है।

प्रश्न : अनुवाद के लिए आपने साहित्य की किन विधाओं को प्राथमिकता प्रदान की ?

उत्तर : मैंने मुख्य रूप से कश्मीरी, अंग्रेजी और उर्दू से हिन्दी में अनुवाद किया है। साहित्यिक विधाओं में कहानी, कविता, उपन्यास, लेख, नाटक आदि का हिन्दी में अनुवाद किया है।

प्रश्न : कश्मीरी से हिन्दी में अनुवाद-कर्म में संलग्नता का आपका प्रेरणास्त्रोत क्या रहा है ?

उत्तर : 1962 में कश्मीर विश्वविद्यालय से एम० ए० (हिन्दी) कर लेने के बाद मैं पी० एच० डी० करने के लिए कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय आ गया (तब कश्मीर विश्वविद्यालय में रिसर्च की सुविधा नहीं थी) यू० जी० सी० की जूनियर फैलोशिप पर कश्मीरी तथा हिन्दी कहावतों का तुलनात्मक अध्ययन पर शोधकार्य किया। 1966 में राजस्थान लोक सेवा आयोग से व्याख्याता हिन्दी के पद पर चयन हुआ। कुछ समय के लिए भीलवाड़ा में और फिर लगभग दस वर्षों तक प्रभु श्रीनाथजी की नगरी नाथद्वारा (उदयपुर) के राजकीय कालेज में हिन्दी विभागाध्यक्ष के रूप में पदस्थापन हुआ। लिखने-पढ़ने, खास तौर पर अनुवाद करने के प्रति मेरी रुचि यहीं पर विकसित हुई। कालेज लाइब्रेरी में उन दिनों देश की प्रतिष्ठित पत्रिकाएँ-धर्मयुग, सारिका, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नवनीत, कादम्बिनी आदि आतीं थी। इन में यदा-कदा अन्य भारतीय भाषाओं से हिन्दी में अनुवादित कविताएं/कहानियां/ व्यंग्य आदि पढ़ने को मिल जाते। मुझे इन पत्रिकाओं में कश्मीरी से हिन्दी में अनुवादित रचनाएँ बिल्कुल ही नहीं या फिर बहुत कम देखने को मिलतीं। मेरे मित्र मुझसे अक्सर कहते कि मैं यह काम बखूबी कर सकता हूं क्योंकि एक तो मेरी मातृभाषा कश्मीरी है और दूसरा हिन्दी पर मेरा अधिकार भी है। मुझे लगा कि मित्र ठीक कह रहे हैं। मुझे यह काम कर लेना चाहिए। मैंने कश्मीरी की कुछ चुनी हुई सुन्दर कहानियों/ कविताओं/लेखों/संस्मरणों आदि का मन लगाकर हिन्दी में अनुवाद किया। मेरे ये अनुवाद अच्छी पत्रिकाओं में छपे और खूब पसन्द किए गए। कुछ अनुवाद तो इतने लोकप्रिय एवं चर्चित हुए कि अन्य भाषाओं यथा कन्नड़, मलयालम, तमिल आदि में मेरे अनुवादों के आधार पर इन रचनाओं के अनुवाद हुए और उधर के पाठक कश्मीरी की इन सुन्दर रचनाओं से परिचित हुए। मैंने चूंकि एक अछूते क्षेत्र में प्रवेश करने की पहल की थी, इसलिए श्रेय भी जल्दी मिल गया।

प्रश्न : अनुवाद की अपनी एक जटिल प्रक्रिया होती है। इस प्रक्रिया को आपने कैसे पूर्ण किया ? इस बारे में कुछ बतलाइए।

उत्तर : अनुवाद प्रक्रिया से तात्पर्य यदि उन सोपानों/चरणों से है, जिनसे गुज़र कर अनुवाद/ अनुवादक अपने उच्चतम रूप में प्रस्तुत होता है, तो मेरा यह मानना है कि अनुवाद्य रचना के कथ्य/आशय को पूर्ण रूप से समझ लेने के बाद उसके साथ तदाकार होने की बहुत ज़रूरत

है। वैसे ही जैसे मूल रचनाकार भाव/विचार में निमग्न हो जाता है। यह अनुवाद-प्रक्रिया का पहला सोपान है। दूसरे सोपान के अन्तर्गत वह 'समझे हुए कथ्य' को लक्ष्य-भाषा में अंतरित करे, पूरी कलात्मकता के साथ। कलात्मक यानी भाषा की आकर्षकता, सहजता एवं बोधगम्यता के साथ। तीसरे सोपान में अनुवादक एक बार पुन: रचना को आवश्यकतानुसार परिवर्तित/परिवर्धित करे। मेरे विचार से मेरे अनुवाद की यही प्रक्रिया रही है।

प्रश्न : अनुवाद के लिए क्या आपके सामने कोई आदर्श अनुवादक रहे ?

उत्तर : आदर्श अनुवादक मेरे सामने कोई नहीं रहा। मैं अपने तरीके से अनुवाद करता रहा हूँ और अपना आदर्श स्वयं रहा हूँ। दरअसल, आज से लगभग 30-35 वर्ष पूर्व जब मैंने इस क्षेत्र में प्रवेश किया, अनुवाद को लेकर लेखकों के मन में कोई उत्साह नहीं था, न ही अनुवाद कला पर पुस्तकें ही उपलब्ध थीं और न ही अनुवाद के बारे में चर्चाएं ही होती थीं। इधर, इन चार दशकों में अनुवाद के बारे में काफी चिंतन-मनन हुआ है। यही अच्छी बात है।

प्रश्न : अनुवाद को कुछ विचारकों ने एक तरह का पुनर्सृजन भी माना है। इस सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं ?

उत्तर : मैं अनुवाद को पुनर्सृजन ही मानता हूँ, चाहे वह साहित्य का हो या फिर किसी अन्य विधा का। सच्चे मन से मूल में एकात्म होकर जो अंतरित होगा, वह मूल जैसा ही होगा। दरअसल, साहित्यिक अनुवाद की मूल समस्या पुनर्सृजन नहीं है। अपितु साहित्यिक अनुवाद पुनर्सृजन ही है। साहित्य जगत् में ये मुद्दा चर्चा का विषय बना हुआ है कि अनुवाद को मौलिक सृजन माना जाए या नहीं। यह सही है कि अनुवाद पराश्रित होता है। वह नूतन सृष्टि नहीं अपितु सृजन का पुनर्सृजन होता है। इस दृष्टि से अनुवाद कर्म को मौलिक-सृजन की कोटि में रखने की बात पर बार-बार प्रश्नचिन्ह लग जाता है। मगर, यह भी उतना ही सत्य है कि अनुवाद एक श्रमसाध्य और कठिन रचना-प्रक्रिया है। वह मूल रचना का अनुकरण नहीं वरन पुनर्जन्म है। वह द्वितीय श्रेणी का लेखन नहीं, मूल के बराबर का ही दमदार प्रयास है। ध्यान से देखा जाए तो मौलिक सृजन और अनुवाद की प्रक्रिया प्राय: एकसमान है। दोनों के भीतर अनुभूति पक्ष की सघनता रहती है। अनुवादक जब तक कि मूल रचना की अनुभूति, आशय और अभिव्यक्ति के साथ तदाकार नहीं हो जाता तब तक सुन्दर एवं पठनीय अनुवाद की सृष्टि नहीं हो पाती। इसलिए अनुवादक में सृजनशील प्रतिभा का होना अनिवार्य है। मूल रचनाकार की तरह अनुवादक भी कथ्य को आत्मसात करता है, उसे अपनी चित्तवृत्तियों में उतारकर पुन: सृजित करने का प्रयास करता है तथा अपने अभिव्यक्ति माध्यम के उत्कृष्ट उपादानों द्वारा उसको एक नया रूप देता है। इस सारी प्रक्रिया में अनुवादक की सृजन प्रतिभा मुखर रहती है। जिस प्रकार मूल रचनाकार का लेखन जीवन और जगत् के प्रति उसकी मानसिक प्रतिक्रिया होता है और वह अपनी अनुभूति (प्रतिक्रिया) को शब्दों के माध्यम से

कलात्मक रूप में अभिव्यक्त करता है, ठीक उसी प्रकार अनुवादक भी मूलकृति को पढ़कर स्पन्दित होता है और अपनी अनुभूति (प्रतिक्रिया) को वाणी देता है। मूल रचनाकार की तरह ही अनुवादक को आत्मविलोपन कर मूल कथ्य की आत्मा से साक्षात्कार करना पड़ता है। इसके लिए उसकी सृजनात्मक प्रतिभा उसका मार्गदर्शन करती है। कुछ विद्वान् अनुवाद कर्म को अनुसृजन की संज्ञा देना अधिक उचित समझते हैं। मगर चूंकि दोनों, मूल सृजक और अनुवादक अनुभव, भाषा और अभिव्यक्ति कौशल के स्तर पर एक ही तरह की रचना-प्रतिक्रिया से गुजरते हैं, अत: अनुवाद कार्य को मौलिक सृजन न सही, उसे मौलिक सृजन के बराबर का सृजन-व्यापार समझा जाना चाहिए।

प्रश्न : अनुवादक को अनुवाद करते समय किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ?

उत्तर : यों तो अनुवाद करते समय कई बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए जिनका विस्तृत उल्लेख आदर्श अनुवाद/अनुवादक जैसे शीर्षकों के अन्तर्गत 'अनुवादकला' विषयक उपलब्ध विभिन्न पुस्तकों में मिल जाता है। संक्षेप में कहा जाए तो अनुवादक को निम्न बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए। (1) उसको स्रोत और लक्ष्य भाषा पर समान रूप से अच्छा अधिकार होना चाहिए। (2) विषय का पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए। (3) मूल लेखक के उद्देश्यों की जानकारी होनी चाहिए। (4) मूल रचना में अन्तर्निहित भावों की समझ होनी चाहिए। (5) सन्दर्भानुकूल अर्थ-निश्चयन की योग्यता हो। (6) मूल के प्रति निष्ठा का भाव और (7) सौन्दर्यपूर्ण दृष्टि की प्रबलता हो। एक बात मैं यहाँ पर रेखांकित करना चाहूंगा और अनुवाद-कर्म के सम्बन्ध में यह मेरी व्यक्तिगत मान्यता है। मेरा मानना है कि अनुवाद मूल रचना का अनुकरण मात्र नहीं, अपितु पुनर्जन्म होता है। वह द्वितीय श्रेणी का लेखन नहीं, मूल के बराबर का ही दमदार प्रयास है। कुशल अनुवादक का कार्य पर्याय ढूंढना मात्र नहीं है, वह रचना को पाठक के लिए बोधगम्य बनाए, यह परमावश्यक है। सुन्दर, प्रभावशाली तथा पठनीय अनुवाद के लिए यह ज़रूरी है कि अनुवादक भाषा-प्रवाह को कायम रखने के लिए, स्थानीय बिंबों व रूढ़ प्रयोगों को सुबोध बनाने के लिए तथा वर्ण्य-विषय को अधिक हृदयग्राही बनाने हेतु मूल रचना में आटे में नमक के समान फेर-बदल करे। यह कार्य वह लंबे-लंबे वाक्यों को तोड़कर, उनमें संगति बिठाने के लिए अपनी ओर से एक-दो शब्द जोड़कर तथा 'अर्थ' के बदले 'आशय' पर अधिक जोर देकर कर सकता है। ऐसा न करने पर 'अनुवाद' अनुवाद न होकर मात्र सरलार्थ बनकर रह जाता है।

प्रश्न : मौलिक लेखन और अनुवाद की प्रकृति को आप किस रूप में देखते हैं ?

उत्तर : मेरी दृष्टि में दोनों की प्रक्रियाएं एकसमान हैं। ऊपर विस्तार से बात हो चुकी है। मैं मौलिक रचनाएं भी लिखता हूँ। मेरे नाटक, कहानियां आदि रचनाओं को खूब पसन्द किया गया है। साहित्यिक अनुवाद तभी अच्छे लगते हैं जब अनुवादित रचना अपने आप में एक 'रचना'

का दर्जा प्राप्त कर ले। दरअसल, एक अच्छे अनुवादक के लिए स्वयं एक अच्छा लेखक होना भी बहुत अनिवार्य है। अच्छा लेखक होना उसे एक अच्छा अनुवादक बनाता है और अच्छा अनुवादक होना उसे एक अच्छा लेखक बनाता है। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं, पोषक हैं।

प्रश्न : हमारे देश में अनुवाद को कितना सम्मान प्राप्त हुआ है ? पश्चिम में अनुवाद की क्या स्थिति हैं ?

उत्तर : पश्चिम में अनुवाद के बारे में चिन्तन-मनन बहुत पहले से होता रहा है। कहने की आवश्यकता नहीं कि जिस तरह ज्ञान-विज्ञान एवं अन्य व्यावहारिक क्षेत्रों में पश्चिम बहुत आगे हैं, उसी तरह 'अनुवाद' में भी वह बहुत आगे हैं। वहाँ सुविधाएं प्रभूत मात्रा में उपलब्ध हैं, अनुवादकों का विशेष मान-सम्मान है। हमारे यहां इस क्षेत्र में अभी बहुत-कुछ करना शेष है।

प्रश्न : हमारे देश में अब तक हुए और हो रहे अनुवाद कार्य से आप किस सीमा तक संतुष्ट है ? आपकी दृष्टि में इस दिशा में और क्या किया जाना चाहिए ?

उत्तर : साहित्यिक अनुवाद तो बहुत अच्छे हो रहे हैं। पर हाँ, विभिन्न ग्रन्थ-अकादमियों द्वारा साहित्येतर विषयों के जो अनुवाद सामने आए हैं या आ रहे हैं, उनका स्तर बहुत अच्छा नहीं है। दरअसल, उनके अनुवादक वे हैं, जो स्वयं अच्छे लेखक नहीं हैं या फिर जिन्हें सम्बन्धित विषय का अच्छा ज्ञान नहीं है। कहीं-कहीं यदि विषय का अच्छा ज्ञान भी है तो लक्ष्य भाषा पर अच्छी/सुन्दर पकड़ नहीं है। मेरा सुझाव है कि अनुवाद के क्षेत्र में जो सरकारी या गैर-सरकारी संस्थाएं या कार्यालय कार्यरत हैं, वे विभिन्न विधाओं एवं विषयों के श्रेष्ठ अनुवादकों का एक राष्ट्रीय पैनल तैयार करें।

प्रश्न : अनुवाद के लिए रचना का चयन आप किस आधार पर करते हैं ? रचनाओं के बारे में आपकी चयन-प्रक्रिया क्या है ?

उत्तर : देखिए, पहले यह बात हम को समझ लेनी चाहिए कि हर रचना का अनुवाद हो, यह आवश्यक नहीं है। वह रचना जो अपनी भाषा में अत्यन्त लोकप्रिय रही हो, सर्वप्रसिद्ध हो या फिर चर्चित हो, उसी का अनुवाद वांछित है और किया जाना चाहिए। मेरा मानना है कि केवल अच्छी एवं श्रेष्ठ रचना का ही अनुवाद होना चाहिए। ऐसी रचना का जिसके बारे में पाठक सच्चे मन से यह स्वीकार करे कि सचमुच अगर मैंने इसका अनुवाद न पढ़ा होता तो निश्चित रूप से एक बहुमूल्य रचना के परिचय एवं उसके आस्वादन से मैं वंचित रह जाता।

प्रश्न : अनुवाद में मूल के प्रति निष्ठावान रहना क्या अनुवादक के लिए संभव है ?

उत्तर : अनुवादक यदि मूल के प्रति निष्ठावान नहीं रहता, तो निश्चित रूप से 'पापकर्म' करता है। मगर, जैसे हमारे यहाँ (व्यवहार में) प्रिय सत्य बोलने की सलाह दी गई है, उसी तरह अनुवाद में भी प्रिय लगने वाला फेर-बदल स्वीकार्य है। दरअसल, हर भाषा में उस देश

के सांस्कृतिक, भौगोलिक तथा ऐतिहासिक सन्दर्भ प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में रहते हैं और इन सन्दर्भों का भाषा का अर्थवत्ता से गहरा संबंध रहता है। इस अर्थवत्ता को 'भाषा का मिज़ाज' अथवा भाषा की प्रकृति कह सकते हैं। अनुवादक के समक्ष कई बार ऐसे भी अवसर आते हैं जब कोष से काम नहीं चलता और अनुवादक को अपनी सृजनात्मक प्रतिभा के बलपर समानार्थी शब्दों की तलाश करनी पड़ती है। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि भाषा और संस्कृति के स्तर पर मूल कृति अनुवाद्य कृति के जितनी निकट होगी, अनुवाद करने में उतनी ही सुविधा रहेगी। सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक दूरी जितनी-जितनी बढ़ती जाती है, अनुवाद की कठिनाइयां भी उतनी ही गुरुतर होती जाती हैं। भाषा संस्कृति एवं विषय के समुचित ज्ञान द्वारा एक सफल अनुवादक उक्त कठिनाई का निस्तारण कर सकता है।

प्रश्न : अनुवाद से अनुवाद के बारे में आप की क्या राय है ?

उत्तर : प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो की वह पंक्ति याद आती है जिसमें वह कहता है कि कविता में कवि मौलिक कुछ भी नहीं कहता, अपितु नकल की नकल करता है। 'फोटो-स्टेटिंग' की भाषा में बात करें तो जिस प्रकार मूल प्रति के इम्प्रेशन में और उस इम्प्रेशन के इम्प्रेशन में अन्तर रहना स्वाभाविक है, ठीक उसी प्रकार सीधे मूल से किए गये अनुवाद और अनुवाद से किए गये अनुवाद में फर्क रहेगा। मगर, सच्चाई यह है कि इस तरह के अनुवाद हो रहे हैं। तुर्की, अरबी, फ्रैंच, जर्मन आदि भाषाएं न जानने वाले भी इन भाषाओं से अनुवाद करते देखे गए हैं। इधर, कन्नड़, मलयालम, गुजराती, तमिल, बंगला आदि भारतीय भाषाओं से इन भाषाओं को सीधे-सीधे न जानने वाले भी अनुवाद कर रहे हैं। ऐसे अनुवाद अंग्रेज़ी या हिन्दी को माध्यम बनाकर हो रहे हैं। इससे अनुवाद का अवमूल्यन ही हो रहा है।

प्रश्न : किसी भी ज्ञान-मीमांसा एवं सृजन में प्रशिक्षण एवं सैद्धान्तिक जानकारी को आप कितना आवश्यक मानते हैं ?

उत्तर : सिद्धान्तों की जानकारी उसे एक अच्छा अनुवाद विज्ञानी या जागरूक अनुवादक बना सकती है, मगर प्रतिभाशाली अनुवादक नहीं। मौलिक लेखन की तरह अनुवादक में कारयितृ प्रतिभा का होना परमावश्यक है। यह गुण उसमें सिद्धान्तों के पढ़ने से नहीं, अभ्यास अथवा अपनी सृजनशील प्रतिभा के बल पर आ सकेगा। यों, अनुवाद सिद्धान्तों का सामान्य ज्ञान उसे इस कला के विविध ज्ञातव्य पक्षों से परिचय अवश्य कराएगा।

प्रश्न : आप किस तरह के विषयों के अनुवाद को सबके कठिन मानते हैं और क्यों ?

उत्तर : अनुवाद किसी भी तरह का हो यह अपने आप में एक दु:साध्य/श्रमसाध्य कार्य है। इस कार्य को करने में जो कोफ़्त होती है, उसका अन्दाज़ा वही लगा सकते हैं जिन्होंने अनुवाद का काम किया हो। वैसे मैं समझता हूँ कि दर्शन-शास्त्र अथवा शुद्ध तकनीकी विषयों से

संबंधित अथवा आंचलिकता का विशेष पुट लिए पुस्तकों का अनुवाद करना अपेक्षाकृत कठिन है। गद्य की तुलना में पद्य का अनुवाद करना भी कम जटिल नहीं है।

प्रश्न : अनुवादगत सहजता व स्वाभाविकता लाने के लिए भाषा को कैसा होना चाहिए ?

उत्तर : सुन्दर-सरस शैली, सरल-सुबोध वाक्य गठन, निकटतम पर्यायों का प्रयोग आदि लक्ष्य भाषा की सहजता को सुरक्षित रखने में सहायक हो सकते हैं। यों मूल भाषा के अच्छे परिचय से भी काम चल सकता है, लेकिन अनुवाद में काम आने वाली भाषा तो जीवन की ही होनी चाहिए।

प्रश्न : अनुवाद को किस सीमा तक एक सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय कर्म की संज्ञा दी जा सकती है ?

उत्तर : अनुवाद कर्म राष्ट्र-सेवा का कर्म है। यह अनुवादक ही है जो भाषाओं एवं उनके साहित्यों को जोड़ने का अद्‌भुत एवं अभिनंदनीय प्रयास करता है। दो संस्कृतियों, समाजों, राज्यों, देशों एवं विचारधाराओं के बीच 'सेतु' का काम अनुवादक ही करता है। और तो और, यह अनुवादक ही है जो भौगोलिक सीमाओं को लांघकर भाषाओं के बीच सौहार्द, सौमनस्य एवं सद्‌भाव को स्थापित करता है तथा हमें एकात्मकता एवं वैश्वीकरण की भावनाओं से ओतप्रोत कर देता है। इस दृष्टि से यदि अनुवादक को समन्वयक, मध्यस्थ, संवाहक, भाषायी-दूत आदि की संज्ञा दी जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। कविवर बच्चन जी, जो स्वयं एक कुशल अनुवादक रहे हैं, ने ठीक ही कहा है कि अनुवाद दो भाषाओं के बीच मैत्री का पुल है। वे कहते हैं-"अनुवाद एक भाषा का दूसरी भाषा की ओर बढ़ाया गया मैत्री का हाथ है। वह जितनी बार और जितनी दिशाओं में बढ़ाया जा सके, बढ़ाया जाना चाहिए।" अपने देश के सन्दर्भ में बात करें तो ज्ञात होगा कि हमारा देश एक बहुभाषा-भाषी देश है जिसमें अठारह प्रमुख भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त लगभग 550 बोलियां बोली जाती हैं। हिन्दी को छोड़ प्राय: प्रत्येक प्रदेश की अपनी भाषा है और उस भाषा की अपनी स्वस्थ, सुदीर्घ एवं साहित्यिक-सांस्कृतिक परम्परा है, जिसमें भारतीय धर्म-दर्शन, विद्या-बुद्धि, चिंतन और कलाओं की चर्मोत्कृष्ट संपदा समायोजित है। दूसरे शब्दों में भारतीय मनीषा और विचारणा इन्हीं भाषाओं के साधकों एवं सृजकों की समेकित अभिव्यक्ति है जिसे हम दूसरे शब्दों में 'भारतीयता' या 'भारतीय अस्मिता' भी कहते हैं।

आज हमारे देश के सामने यह प्रश्न चुनौती बनकर खड़ा है कि बहुभाषाओं वाले इस देश की सांस्कृतिक धरोहर को कैसे अक्षुण्ण रखा जाए ? कैसे देशवासी एक-दूसरे के निकट आकर आपसी मेलजोल और भाईचारे की भावनाओं को आत्मसात कर सकें ? वर्तमान परिस्थितियों में यह और भी ज़रूरी हो जाता है कि देशवासियों के बीच सामंजस्य और सद्‌भाव की भावना विकसित हो ताकि प्रत्यक्ष विविधता के होते हुए भी हम अपने सांस्कृतिक अस्मिता एवं सौहार्दता के दर्शन कर अनेकता में एकता की संकल्पना को मूर्त्त रूप प्रदान कर सकें।

अनुवाद कार्य इस दिशा में एक महती भूमिका अदा कर सकता है। दरअसल, यह एक ऐसा मांगलिक कार्य है जो भारतीय अस्मिता को मुखर कर हमें, सच में, भारतीय बनाता है तथा क्षेत्रीय संकीर्णताओं एवं परिसीमाओं से ऊपर उठाकर अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि प्रदान करता है।

आने वाले समय में सम्प्रेषण के नए-नए माध्यमों व आविष्कारों से वैश्वीकरण के नित्य नए क्षितिज उद्घाटित होंगे। इस सारी व्यवस्था में अनुवाद की महती भूमिका होगी और इससे 'वसुधैव कुटुम्बकम' की अवधारणा साकार होगी। आज किसी भी विकासशील देश को यदि विकसित देश बनना है तो बिना अनुवाद साधना के यह स्वप्न साकार नहीं हो सकता। इस दृष्टि से सम्प्रेषण व्यापार के उन्नायक के रूप में अनुवाद/अनुवादक की भूमिका निर्विवाद रूप से अति महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती है।

प्रश्न : अनुवाद मनुष्य जाति को एक-दूसरे के पास लाकर हमारी छोटी दुनिया को बड़ी बनाता है। इसके बावजूद यह दुनिया अपने-अपने छोटे अहंकारों से मुक्त नहीं हो पाती— इसके कारण क्या हैं ? आप इस बारे में क्या सोचते हैं ?

उत्तर : देखिए, इसमें अनुवाद/अनुवादक कुछ नहीं कर सकता। जब तक हमारे मन छोटे रहेंगे, दृष्टि संकुचित एवं नकारात्मक रहेगी, यह दुनिया हमें सिकुड़ी हुई ही दिखेगी। मन को उदार एवं बहिर्मुखी बनाने से ही हमारी छोटी दुनिया बड़ी हो जाएगी।

प्रश्न : अच्छा, यह बताइए कि कश्मीर की समस्या का समाधान करने में कश्मीरी-हिन्दी एवं कश्मीरी से हिन्दीतर भारतीय भाषाओं में अनुवाद किस सीमा तक सहायक हो सकते हैं ?

उत्तर : विपरीत एवं विषम परिस्थितियों के बावजूद कुछ रचनाकार अपनी कलम की ताकत से घाटी में जातीय सद्भाव एवं साम्प्रदायिक सौमनस्य स्थापित करने का बड़ा ही स्तुत्य प्रयास कर रहे हैं। मेरा मानना है कि ऐसे निर्भीक लेखकों की रचनाओं के हिन्दी अनुवाद निश्चित रूप से इस बात को रेखांकित करेंगे कि बाहरी दबावों के बावजूद कश्मीर का रचनाकार शान्ति चाहता है और भाईचारे और मानवीय गरिमा में उसका अटूट विश्वास है और इस तरह एक सुखद वातावरण की सृष्टि संभव है। ऐसे अनुवादों को पढ़कर वहां के रचनाकार के बारे में प्रचलित कई तरह की बद्धमूल/निर्मूल स्थापनाओं का निराकरण भी हो सकता है। इसी प्रकार कश्मीरी साहित्य के ऐसे श्रेष्ठ एवं सर्वप्रसिद्ध रचनाकारों जैसे, ललद्यद, नुंदऋषि, महजूर, दीनानाथ नादिम, रोशन, निर्दोष आदि, जो सांप्रदायिक सद्भाव के सजग प्रहरी रहे हैं, की रचनाओं के हिन्दी अनुवाद कश्मीर में सदियों से चली आ रही भाईचारे की रिवायत को निकट से देखने में सहायक होंगे।



हिमाचली प्रेम कहानी

सुन्ही-भूंखू

❑ डॉ० गौतम शर्मा 'व्यथित'

गद्दी जन जाति की महिलाएं विवाह के अवसर पर वृत्ताकार मण्डल में नृत्य करतीं अपने मनोभावों को विभिन्न मुद्राओं में व्यक्त करतीं मन्थर गति में घण्टों नाचती रहती हैं। इस नृत्य को आंचलिक भाषा में 'डंगी' कहते हैं। इसमें केवल महिलाएं ही नाचती हैं। वे स्वर देती हैं उस बीते युग की प्रेम कहानी को जो हिमाचल में 'सुन्ही-भूंखू' के प्रेम को अमर बनाए हुए हैं। गद्दी पुरुष वर्ग भी इसी कहानी को 'लाहौली' लोक नृत्य की पदचाप पर मंथर गति में नृत्य करना दोहराता है। विवाह एवं मेलों के अवसर पर इन लोक नृत्यों का भाव सौंदर्य और इस प्रेम कहानी का संवेदना प्रभाव सहज दिखायी देते हैं। लोक कथाकार बताते हैं-बहुत पहले भट्टी-टिक्करी, (भटियात) चम्बा के एक गांव में गद्दी परिवार था जिसमें मां और उसके दो बेटे थे। परिवार भेड़-बकरियां पालने के साथ-साथ खेती-बाड़ी करके जीवन-यापन कर रहा था। छोटा भाई घर पर माँ की देखभाल करता और बड़े (भूंखू) को पुहाली (भेड़-बकरियों की देखभाल) करनी पड़ती। भूंखू देखने-सुनने में सुन्दर, लम्बे कद-काठ, सुडौल शरीर वाला, पहली नज़र में ही सबसे दोस्ती बढ़ा लेता। उसका ब्याह निकटवर्ती गाँव की भटियाली गदेटड़ी से हो गया जो कमसिन और रूप सौंदर्य में बेमिसाल थी। उस समय गद्दियों में लड़की को 7-8 वर्ष की आयु में ही ब्याह दिया जाता। तत्पश्चात् वह 5-6 वर्ष मायके ही रहती। कुछ वर्षों बाद 'सदणोज' (मुकलावे) को धाम न्योति जाती और लाड़ी (नव ब्याहता बहु) को घर लाया जाता, डोली में बिठाकर, ढोल-ढमाके के साथ।

भूंखू को मुरली (बांसुरी) बजाने का बड़ा शौक था। उसकी बूढ़ी माँ उसकी मुरली को सुनकर दूर से पहचान जाती और कहती- मेरा भूंखू आ रहा है। उसकी मुरली का जादू भरा संगीत पहाड़ों की हर शै को मोहित कर लेता। गाँव की ढलान पर भेड़-बकरियां चराता जब वह मुरली की तान छेड़ता तो वृक्षों की डालियां लहराने लगतीं, हवा सरसराने लगती, नदी-नालों का जल कल-कल करता बहता ताल देने लगता और भेड़-बकरियां कान लगा कर उसकी ओर दौड़ी चली आतीं। गाँव की छोरियां बेकल हो जातीं। उसकी माँ बांसुरी के सम्मोहनी-प्रभाव को जानती थी। वह अक्सर कह देती- 'भूंखू बेटा! गाँव के निकट व्यूंखली मत बजाया कर! बजुर्ग बुरा मानते हैं, परन्तु वह माँ की बातों को हंस कर टाल देता।

उसे कुछ ही दिन तो ठहरना होता गाँव में। वैसे ही पुहाल कहां ठहर पाते हैं घर-गाँव में। घर-वारी की खबर भी चलते-चलते लेते हैं। वे तो गर्मियों में चढ़ जाते हैं, पहाड़ों पर, दूर लाहौल की ओर और (स्याल) शरद ऋतु में उतर जाते हैं कांगड़ा घाटी की ढलानों, जंगलों, में। धण (भेड़-बकरियां) को पालते-संभालते यूं ही बीत जाती है जिन्दगी पुहालों की। वे ही उसका परिवार और संगी-साथी होते हैं। पत्नी-परिवार को तो घर पर ही छोड़ना

संपर्क : *राज मन्दिर, नरेटी, कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश - 176 208*

पड़ता है। खुले आकाश के नीचे, बन-ढाकों, नदी-नालों के किनारे सूरज डूबते लगता है उनका डेरा। ऐसी स्थिति में कहां साथ रखता सजब्याही पत्नी को, दूसरे माँ की सेवादारी की सोच भी ना रहती उसे। उसकी साथी थी तो केवल 'कंढी' कुत्तिया। बड़ी तेज और तगड़ी थी। रीछ और बाघ से भी भिड़ जाती। भेड़-बकरियों को आँच नहीं आने देती। अपने मालिक को जब कभी उदास देखती तुरन्त उसके पास आकर पूंछ हिलाती, चूं-चूं करती उससे ममता जताती- दु:ख-सुख में सांझी बनती।

गर्मियां तपने लगीं। 'सदणोज' (मुकलावे) के बाद वह अपनी माँ तथा पत्नी से मिलकर धण के साथ लाहौल की ओर चल दिया। वह अपने साथियों से पिछड़ कर पहाड़ियां, जोत लाँघता भेड़-बकरियां चराता आगे बढ़ता गया। महीनों बाद उसे एक गाँव दिखायी दिया। वह थक-सा गया था। रसद (खाद्य सामग्री) भी खत्म हो चली थी। उसने धण को एक नाले के किनारे बिठा दिया और रसद खरीदने दुकान की खोज में गाँव की ओर चल दिया। ज्यूं ही वह गाँव में घुसा, लाहौली कुत्ते उसके पीछे हो गए। वह उन्हें अपने सोंटे से खदेड़ता आगे बढ़ रहा था कि अचानक एक घर का किवाड़ खुला। दोनों परस्पर देखते ठगे रह गए। लाहौली भोटली ने उससे पूछा- 'तुम कौन हो ? क्या ढूंढ रहे हो ?'

''उसने बताया' मेरा नाम भूंखू है। पुहाल हूं। रसद लेने आया हूँ। दुकान ढूंढ रहा हूँ। और तू-

'मैं सुन्ही हूं। यह घर मेरा है। प्यासे हो, तो पानी पीकर जाओ। भूख लगी है, तो रोटी खाकर जाओ।'

वह उसे थका-मान्दा होने पर भी आकर्षक लगा। वह उसके गठीले शरीर पर मोहित हो गयी। उसने उसे भीतर बुलाकर आदर-खातिर की। दोनों को ऐसा आभास हुआ, मानो वे कईं जन्मों से एक दूसरे की तलाश में थे। प्रेम मार्ग पर कौन, कहाँ, कैसे, कब मिल जाता है, इस रहस्य को कोई नहीं जानता। सुन्ही भी न मालूम कब से उसकी प्रतीक्षा में थी। भूंखू भी उसके प्रेमभाव और आतिथ्य से इतना प्रभावित हुआ कि उसे अपना बीता जीवन विस्मृत सा हो गया। वह उसके साथ प्रेम भरा सुखी जीवन भोगने लगा। उसे जब भी धण (रेवड़) या घर की याद आती तो वह उसे मीठी-मीठी बातों तथा रूप-सौंदर्य के जाल में अपना बनाती सारी चिन्ताएं भुला देती। भूंखू की कंढी कुतिया हर रोज अपने मालिक की सुध लेने सुन्ही के द्वार पर आती। सुन्ही उसे रोटी-टुकड़ा डाल कर संतुष्ट कर देती। कंढी इसी सिलसिले में अपने मालिक की प्रतीक्षा करती धण की रखवाली करती रही जो दिन को इधर-उधर चर लेता और शाम ढले नाले के किनारे डेरा डाल देता। इसी तरह वर्षा ऋतु भी बीत गई।

लाहौल घाटी में कार्तिक ऋतु आ गई। ठण्डी हवाएं सरसराने लगीं। गद्दी-पुहाल अपने धणों- ''भेड़-बकरियों'' को चराते-लारते (हाँकते) चम्बा भरमौर के रास्तों पर लौटने लगे। पुहालों की घर-गृहस्थियाँ उनके लौटने-मिलने की प्रतीक्षा करने लगीं। कालान्तर चम्बा - भटियात की पहाड़ियों, नदी-नालों, वन-घाटियों में भेड़-बकरियों की मैं-मैं गूँजने लगी। व्यूंखली के

सुर संगीत भरने लगे। वीरान रास्तों और बस्तियों में फिर से जीवन हँसने-खिलने लगा। भूंखू की माँ तथा पत्नी को भी उसके घर लौटने की प्रतीक्षा बढ़ने लगी। परन्तु उधर लाहौली के प्रेम-पाश में उलझा भूंखू क्या जाने कब ऋतु बदल गई। कब पुहाल अपने देस को प्रस्थान कर गए? उसके धण की क्या दशा होगी ? सुन्ही की प्रेम मादकता में मानों उसे सब कुछ भूल-बिसर सा गया था। एक दिन अचानक हवा के वेग के साथ उड़ता भुजपत्र का पत्ता कमरे के झरोखे से भीतर आ गया। उसे देख कर भूंखू चेताया। उसे ऋतु बदलने का बोध हुआ शर्द ऋतु उतरने पर पहाड़ों के मार्ग बन्द होने के अहसास से घबरा गया। उसे भेड़-बकरियों की वेदना बेकल करने लगी। वह वहाँ से भागना चाहता। परन्तु उसे सुन्ही का प्यार सहजता से कहाँ मुक्त करता। उसने उससे विदा मांगी परन्तु वह तो उसे सब कुछ समर्पित कर बैठी थी। कहाँ जाने देती। वह जब भी जाने का नाम लेता तो उस पर तो मानो गाज गिर पड़ती। परन्तु भूंखू के मन में अपने धण और माँ से मिलने की वेदना से आहत सुन्ही ने उसे इस शर्त पर भेजना स्वीकार कर लिया कि वह ग्रीष्म ऋतु के बदलते ही उससे आ मिले। अन्यथा वह अपने प्राण त्याग देगी। भूंखू ने उसको अगले मौसम में मिलने का वचन दिया।

सुन्ही समस्या में थी-अपने प्रेमी को घर से निकाले तो कैसे ? गाँव में तो उनके प्रेम की बड़ी चर्चा थी, बड़ा विरोध था। लाहौले तो उसे जान से मारने को उतारू थे। परन्तु सुन्ही की भी अपने गाँव में बड़ी मिलनसारी थी। उसने अपने सच्चे प्रेम की शर्त निभाई और उसे विश्वस्त भाइयों (लाहौलों) के साथ गाँव से बाहर सुरक्षित पहुँचा कर भारी मन और भीगी आँखों से विदा किया। दोनों अगले वर्ष फिर उसी चाब से मिलने का वचन ले-देकर अपने-अपने मार्ग पर बिछुड़ गए। बढ़ते मार्ग को पहाड़ों ने जब तक अपने मोड़दार आगोश में छिपा नहीं लिया, सुन्ही उसे देखती रही।

लाहौल को गए 'पुहाल' अपने धणों को लारते-हांकते ढाल-घाट पर चराते घर-बारी की संभाल लेने लगे। भूंखू के माता-पिता आते-जाते पुहालों से उसका अता-पता पूछते थक गए। उसकी यौवना पत्नी उसके इन्तज़ार में रात को देर तक घर की पगडण्डी पर आहट सुनती चिन्तामग्न रहती। सारा गाँव रात के सन्नाटे में डूब जाता और वह पति-विछोह में मिलन की आस के सपने देखती करवटें बदलती रहती। अश्विन मास बीत चला। सारे पुहाल पहाड़ों से मैदानों की ओर प्रस्थान करने लगे। आते-जाते पुहाल भी भूंखू का अता-पता करते। विधि का विधान किसने टाला, किसने जाना। जिसने भोगा उसने जाना। किसी ने उसकी माँ से कह दिया कि भूंखू तो अब नहीं लौटेगा। उसका तो दस दिन पूर्व मार्ग में पहाड़ी से गिरने पर देहान्त हो गया है। सन्देश देने वाला उसका जोड़ीदार (मित्र) ही था। पुहालों के जीवन के साथ प्राय: ऐसा घटता रहता है। अत: उसके कहने के लहज़े पर घर वालों को विश्वास हो गया।

नयी-नवेली गदेटड़ी विधवा हो गई। लोकरीति के अनुसार सामाजिक रस्में की जाने लगीं। कहते हैं- तेरहवीं के दिन पहाड़ी पर अचानक बांसुरी सुनाई दी। वियोग में तड़पती माँ का हृदय एक दम पुकार उठा- 'मेरा भूंखू जीवित है। दिन-बार, रोना-पीटना बन्द करो। मेरा भूंखू आ रहा है। सुनो! वही तो बजा रहा है व्यूंखली।' उसकी छाती से ममता की धार

बहने लगी। सभी चकित थे। कुछ ही पलों में भूंखू आँगन में आ धमका। गाँव का मातम हर्षोल्लास में बदल गया। भूंखू ने कुंछ और ही समझा। परन्तु जब उसे वास्तविकता का बोध हुआ तो उसे अपने मित्र पर बड़ा क्रोध आया। उसके मन में अनेक सवाल जन्म लेने लगे। आखिर उसने ऐसा कहा क्यों ? किस जन्म के बैर का बदला लेना था उसे ? परन्तु माँ ने उसे समझा-बुझा कर शान्त किया। वह कहती- 'बेटा! इसमें किसी का दोष नहीं। होनी बड़ी बलवान है। होकर रहती है। बड़े-बड़े राजा-महाराजा, तपस्वी, योगी-भोगी कोई नहीं बच पाया उसके प्रभाव से। हमारी तो विसात क्या ?'

कुछ दिन घर पर ठहर कर, अड़ोस-पड़ोस से मिल-मिला कर, माँ को समझा कर, पत्नी को मना कर, अपने धण को लारता भूंखू, कांगड़ा घाटी की ओर उतर आया। इस बार तो वह और पुहालों से काफी पीछे रह गया था। वह व्यास नदी के किनारे धण को पालता-चराता उनकी प्रतीक्षा करने लगा। व्यासा का कल-कल बहता पानी उसे पहाड़ों के बीच चन्द्रभागा के किनारे बसे गाँव लाहौल में रहती प्रिया सुन्ही भोटली के पास ले जाता। जल लहरियों के वेग पर तैरती आँखें मन को पगला जातीं। वह मन ही मन सोचता- कैसे? कब? उससे जा मिलूं। दूसरी ओर 'धण' की देखभाल, शर्द ऋतु बीतने की प्रतीक्षा, रास्तों से वर्फ ढलने की सोच, परिवार का दायित्व आदि चिन्तायें प्यार-प्रीत में जटिल बंधन बन जाती। जीवन की सहजता में उदासी और निराशा भर जाती।

ऋतु बदली। कांगड़ा घाटी में लोहड़ी (माघी) के त्यौहार के साथ ही गद्दियों के 'धण' पहाड़ी की ओर बढ़ने लगे। धौलाधार का दामन पुनः ममियाने लगा। नदी-नालों में फिर गूँजने लगे बांसुरी-अलगोजों के सुर। गीतों की सुरीली भाखें (संगीत)। वसन्त ऋतु के खिलने के साथ गद्देरन (गद्दियों के क्षेत्र) में बसोआ (बैसाखी) के त्यौहार की चर्चा बढ़ी। गीतों-नृत्यों की लय-ताल पर थिरकने लगे पहाड़। चम्बा-चौगान में सजने लगी सुई मेले की यात्राएं। डंगी और लाहौली लोकनृत्यों ने एक बार फिर संवार दिया रावी का दामन, चम्पावती का देश चम्बा। कुड़ियों (लड़कियों) को मां के हाथ से बनायी 'पिन्दड़ी' खाने का चाव सताने लगा। ससुराल में तो बड़ा सताता है लड़कियों को पिन्दड़ी का त्यौहार। त्यौहार लाते भाई का रास्ता देखते थक जाती हैं बहनों की आँखें। घर-बारी संभालते, माता-पिता से मिलते-जुलते पुहाल फिर चल देते हैं। लाहौल की ओर। मार्ग में भरमौर तथा मनिम्हेस में स्थापित देवताओं की पूजा परसना करते। कैलंग को सुख-शान्ति रखने की सुक्खणे (मन्नौतियां) करना नहीं भूलते। चिरकाल से हिमपात की ओढ़नी में दुबके-सोए पहाड़ी मार्ग फिर जीवन्त हो उठे। भेड़-बकरियों के टुण्डुओं (पाओ) के स्पर्श के ताल पर और झूम उठे बांसुरी के नाद, पुहालों के राग पर। भूंखू इस बार तो काफी पिछड़ गया था अपने पुहाल-साथियों से। दो-चार दिन घर ठहर कर भेड़-बकरियों के चारे की समस्या को बताकर माँ और पत्नी से विदा लेकर चल दिया था धण को लारता भरमौर के मार्ग से लाहौल की ओर। उसका मन तो आकुल-व्याकुल था, कब सुन्हीं के गाँव पहुंचे और उससे जा मिले। दिन उसी की याद में और रातें उसी के सपनों में बीत जातीं।

चम्बयाली पुहाल लाहौल की घाटी में उतरने लगे। चन्द्रभागा के किनारे ढलानों-समतलों पर मैं-मैं करते चरते भेड़-बकरियों के रेवड़ रंग और संगीत भरने लगे। भूंखू की याद में दिन-रात बिताती सुन्हीं भोटली के सपने साकार होने लगे। वह मन ही मन अपने भूंखू से संयोग पाने के अनेक सपने संजोने लगी। वह जब भी किसी पुहाल-गद्दी को गाँव आते देखती तो दौड़कर भूंखू का अता-पता पूछती। परन्तु दूसरे के दर्द को कौन जानता है ? कोई मरे, जिये, किसी को क्या ? कोई कुछ नहीं बताता। परन्तु वह भी कहाँ चुप रहती। अन्ततः एक पुहाल से जब उसने बड़ी नम्रता से पूछा तो उसने उसके चेहरे को गौर से पढ़ते और लाहौली मित्र की दोस्ती निभाते, जो सुन्ही को चाहता था, अलगरजी (लापरवाही) में बताया- भोटली! तू तो पगली है। किस की प्रतीक्षा कर रही है ? अरी! उस को मरे तो महीनों बीत चुके हैं। अब तेरा भूंखू यहाँ कहाँ आएगा ? कोई और घर देख!!! सुन्ही के पांवों के नीचे से ज़मीन सरक गयी। सर पर वज्रपात सा हुआ। एक वर्ष का वियोग सहती प्रतीक्षा में प्रोषित पतिकामा बनी, घड़ी-पल गिनती इस आघात को सहन कर सकी। धड़ाम से गिर पड़ी। भूंखू-भूंखू करती बिलखती-सिसकियाँ भरती, वहीं चल बसी। भागा नदी का बहता पानी उसके इस अंत पर आँसू बहाता रहा परन्तु मनुष्य ने उसके मन के दर्द को मज़ाक समझा। गाँव वालों ने सुख की साँस ली।

कुछ दिनों बाद भूंखू भी लाहौल घाटी में भागा के किनारे पहुँचा। सोचता-यहीं, कहीं प्रतीक्षा कर रही होगी। उसकी भोटली- सुन्ही। वह मुझे ज़रूर मिलेगी। वह रसद की तलाश के बहाने गाँव से गुजरता सुन्ही के घर की ओर बढ़ने लगा। सहसा उसकी दृष्टि आकाश की ओर गई जो आग की तरह लाल रंग में रंगा था। उसे यह अशुभ लक्षण लगा। मन में कई शंकाएं होने लगीं, कईं प्रश्न जन्म लेने लगे। उसे क्या मालूम था- उसकी सुन्ही कब की अलविदा कह गई थी। उसने बड़े चाव तथा विश्वास से एक लाहौले को पूछा- मित्र! सुन्ही तो राजी-बाजी (सकुशल) है न!!

वह व्यक्ति चकित सा उसके चेहरे को देखता-उसके दर्द को पहचानता बोला- 'सुन्ही!! क्या बताऊं!! वह तो कब की किसी भूंखू की याद में भूंखू-भूंखू कहती रोती-बिलखती सुर्गवास हो गई है। बेचारी, अपने भूंखू के शोक को सह न सकी। उसके गम से वहीं ढेर हो गयी थी।' भूंखू के पाँव तले ज़मीन खिसक गई। शरीर पर असह वज्रपात सा हुआ। वह भी सुन्ही! सुन्ही!! पुकारता- भेड़-बकरियां तथा रिश्तेदारी को छोड़ कर वहीं ढेर हो गया। इस प्रकार विरह में तड़पती दोनों प्रेमियों की आत्माएं एक हो गईं।

कहते हैं- इन सच्चे प्रेमियों को धोखा देकर मारने-सताने के कारण उस गाँव में माहमारी पड़ी। अनेक टोने-टोटके किए गए, परन्तु कोई असर नहीं हुआ। अंततः किसी गुर के माध्यम से देवता ने कहा- 'यह उन्हीं दो आत्माओं का प्रकोप है। उन्हीं की मन्नौतियां मनाओ। शायद शान्ति हो सके।' लोक विश्वास ने करामात दिखाई। उनकी समाधियां बनीं। हर वर्ष मेला लगने लगा जिस में एकत्रित लोग उनके अमर प्रेम की कहानी दोहराते वहाँ श्रद्धा के फूल चढ़ाते सुख-शान्ति की कामनाएं करते हैं।



सांझा दर्द

❑ खालिद हुसैन

'अपना कश्मीर' आंदोलन की ओर से एक बहुत बड़ा जलसा इंदिरा-भवन में आयोजित किया गया था, जिसमें कश्मीर से विस्थापित होकर आये अल्पसंख्यक वर्ग के हजारों कश्मीरी भाग ले रहे थे। आतंकवाद के खिलाफ और कश्मीर को भारत से अलग करने वाली ताकतों की साजिशों को हर कीमत पर विफल करने के लिए धुआंदार भाषण हो रहे थे।

पंडित गाशलाल कौल की तकदीर सबसे ज्यादा जोशीली थी।

वह कह रहा था- ''हम कश्यप ऋषि की संतान हैं- हम कश्मीर के मूल निवासी हैं, कश्मीर हमारा है-कल्हण की राजतरंगिणी पढ़कर देख लें कि ऋषि मुनियों की इस धरती पर हजारों वर्षों से हमारा राज रहा है। यह भारत का अटूट अंग है और जो लोग इस बात को मानने से इन्कार करते हैं, वो कश्मीर छोड़ दें और उसी मुल्क में जाएं जहाँ से उनको आतंकवाद फैलाने के लिए धन और हथियार मिलते हैं।'' गाशलाल कौल सरकार की कमज़ोर कश्मीर नीति की भी तीखी आलोचना कर रहा था।

वह कह रहा था- ''कश्मीर के बारे में सरकार की भी कोई स्पष्ट नीति नहीं है, यहां तो 'मक्करचक्र की कहानी-आधा तेल आंधा पानी'' वाली बात है, कभी सरकार आतंकवादी संगठनों से बातचीत करने का ऐलान करती है तो कभी उग्रवाद को जड़ से खत्म करने के लिए सैनिक कार्यवाही जारी रखने की बात दुहराती है और ऐसा पिछली आधी सदी से भी ज्यादा समय से हो रहा है... पर 'न हीर मरी है, न सारंगी टूटी है'.. कश्मीर में सरकार उन लोगों के नाज़ उठाती है जो देश के टुकड़े करना चाहते हैं.. उन लोगों के पांव चाटती है जिन्होंने हमारा कत्ल किया ... और कश्मीर से हमें पलायन के लिए मजबूर किया.. इन अलगाववादियों ने हमें अपने ही देश में शरणार्थी बना दिया।'' कहकर उसने कश्मीर में अलगाववाद की तहरीक चलाने वालों और उग्रवाद फैलाने वालों को जी भर कर गालियां दी और मांग की उन्हें कश्मीर में अलग होमलैंड दे दिया जाए।

पंडित गाशलाल कौल का भाषण सुनकर लोगों में एक जोश, एक उत्तेजना आ गई। वे उसे अपना असली प्रतिनिधि मानने लगे।

तालियों की गूंज में गाशलाला ने अपना भाषण खत्म किया। जलसा सम्पन्न होते ही अपार प्रशंसा के शब्दों को अपने दिल की बुगनी में डालकर वह अपने शरणार्थी कैंप क्री ओर चल पड़ा।

रघुनाथ बाजार में उसने एक वयोवृद्ध व्यक्ति को देखा जो फिरन पहने, सर पर पगड़ी और कंधे पर पश्मीने का शाल लटकाये चल रहा था। गाशलाल बिना कुछ भी विचारे उस बुजुर्ग की तरफ बढ़ा और बेसाख्ता उसे अपने गले से लगाया।

''बन्दगी जिनाब-बंदगी। क्या हाल है आपका ख्वाजा साहब ? आप ठीक हैं ? आपके बच्चे राजी-खुशी हैं ?''

''हां, पंडित जी। हम सब ठीक हैं.. खुदा का शुक्र है कि अभी तक जी रहे हैं... आप बताइए पंडित जी...''

''यहां सब कुशल-मंगल है... आपकी सेहत कैसी है... आपके बच्चे भी राजी-खुशी से हैं ?'' बूढ़े शख्स ने गाशलाल से पूछा।

''हां, ख्वाजा साहब! भगवती की कृपा और दस्तगीर साहब की दुआ से हम यहां कुशल हैं- आप बताए, वहां अब कश्मीर में हालात कुछ सुधरे हैं? अब तो वहां कोई मुखबिरी नहीं करता होगा। अब तो वहां कोई गद्दार नहीं होगा.. अच्छा यह बताइए ख्वाजा साहब! क्या अब भी आप लोग हमें याद करते हैं ?'' पंडित गाशलाल कौल ने ख्वाजा साहब से पूछा।

''हम आप को एक पल के लिए भी नहीं भूले पंडित जी। भला हम आपको कैसे भूल सकते हैं। सदियों से इकट्ठे रहे हैं, भाइयों की तरह। अमन-शांति से। प्यार-मुहब्बत से। हमारा खून एक है। हमारी नस्ल एक है। हमारी जवान, हमारा कल्चर एक है। हमारे गीत सांझे हैं। संत-फकीर सांझे हैं। हमारे दुख और खुशियां एक हैं। हम आपको कैसे भूल सकते हैं ?'' हम तो आपके बिना अधूरे हैं... बाकी पंडित जी, वहां कुछ भी ठीक नहीं... कौन मुखबिर है, कौन मुजाहिद ... कौन गद्दार... कौन कौम परस्त है, कौन सरकारी है.. कौन जेहादी.. कुछ पता नहीं चलता।'' उसने एक लंबी सांस छोड़कर फिर से कहना जारी रखा- ''बस मौत का धंधा है.. हर शख्स बेज़ार है। क्योंकि वहां पर हर कोई अपने फल को मीठा कहता है... खट्टी तो हमारी तकदीर है... बड़ी ताकतें बयां बाजियां करके पिछले 54 सालों से हमारे ज़ख्मों पर नमक छिड़क रही हैं.. ज्यों समझिये कि रंडी के घर मण्डी लगी हुई है... इन्सानियत मर गयी है। हालात वैसे ही हैं जैसे 12 साल पहले थे... आग और खून का नंगा नाच है... बर्बरियत है.. लोग तंग आ चुके हैं। दोनों तरफ से बंदूकों के शिकार हैं... सारा कश्मीर जल रहा है। हर ओर तबाही है। पंडित जी! ख़ुदा हमारी बदकिस्मती का लिबास किसी को न पहनाए। हमारे उजड़े बागों में तो वनमानुस पटवारी बने घूमते हैं।'' वो शख्स अवसाद में डूबकर बोल रहा था।

''भगवती आप पर रहम करे, नुंद ऋषि कश्मीर में शांति लाये और हम सब दुबारा एक साथ रह सकें।'' गाशलाल ने कहा।

''हां! हम भी वहां पर रोज़ यही दुआएं मांगते हैं- लेकिन पंडित जी। आप बुरा न माने। मैंने आपको पहचाना नहीं। शायद बुढ़ापे की वजह से मेरी याददाश्त साथ नहीं दे रही है। आप का नाम क्या है और आप कश्मीर में कहां के रहने वाले हैं ?'' उस शख्स ने शिष्टाचार के साथ गाशलाल से पूछा।

''ख्वाजा साहब, भला मैंने भी आपको कब पहचाना है। मैं तो आपको बिल्कुल नहीं जानता। आपको कश्मीरी लिबास में देखकर मैं अपनी भावनाओं पर काबू नहीं रख सका और बिना सोचे समझे आपको गले लगा लिया। आपको गले लगाकर मेरे मन को शांति-सी मिली। लगा जैसा मैंने कश्मीर को गले लगा लिया हो। और ....'' पंडित गाशलाल कौल ने भावावेश में एक बार फिर ख्वाजा साहब को अपनी बांहों में ले लिया और दोनों की आंखों में जेहलम उमड़ आया।

अनुवाद : अग्निशेखर



पंजाबी कहानी

ललद्यद की अस्थियां

❑ स. हरभजन सिंह 'सागर'

यह कोई दैविक चमत्कार ही था कि पूरे सफर में गठरी की एक भी गांठ नहीं खुली। पर... उसमें से अस्थियां गायब थीं। देखते ही मारे कंपकंपाहट और घबराहट के उसके माथे पर पीसने की नन्हीं-नन्हीं बूंदें उभर आईं। वह भौंचक्का-सा खाली गठरी को देखने लगा। उसकी चिंता का पहला कारण यह था कि यह अस्थियां किसी साधारण मानव की नहीं। अपितु ललद्यद की थीं। जो छः सौ वर्ष से भी अधिक लंबी आयु बीता कर अभी कुछ दिन पहले ही स्वर्ग सिधारी थी। वह चुपचाप खड़ा सोच रहा था कि घर वापिस पहुंच कर अस्थियों के खो जाने का क्या कारण बताएगा। और क्या लोग उसकी बातों पर विश्वास करेंगे? दूसरा कारण यह था कि वह इस समय अजनबी लोगों से घिरा हुआ था। लोग तरह-तरह की बातें कर रहे थे। उनकी बातें सुन-सुन कर वह चिंतित हो रहा था।

वह सोचने पर विवश था कि यह कैसे हुआ ? ''मैंने तो पूरे सफर में अस्थियों वाली गठरी को अपनी छाती से लगा कर रखा था। एक बार भी रास्ते में खोल कर नहीं देखा। फिर अस्थियां ? अस्थियां कहां गई ? भला अस्थियां भी चुराने की चीज थी, जो कोई चुरा कर ले गया हो।''

श्रीनगर से हरिद्वार तक थका देने वाले सफर के बाद अभी उसने सुख की सांस ली ही थी कि इस चिंता ने उसे घेर लिया। - गठरी से अस्थियां गायब थीं। हरिद्वार में उसकी दृष्टि सुंदर मंदिरों के चमकते हुए कलशों पर पड़ी तो उसे यह जानकर संतुष्टी हुई कि वह अपने लक्ष्य-स्थल पर पहुंच चुका था। लंबे सफर की थकावट भी उसे महसूस नहीं हो रही थी। पल भर के लिए उसके मुख पर मंद सी मुस्कान फैल गई। तभी उसे याद आया- जब गाड़ी लाल चौक से निकल कर पांद्रियेठन पहुंची ही थी कि सहसा अस्थियों वाली गठरी में कुछ हलचल हुई। जैसे पिंजरे में से बाहर निकलने के लिए कोई पंछी फड़फड़ा रहा हो। उसे महसूस हुआ जैसे जेहलम अपना प्रवाह बदल कर गाड़ी में घुस आया हो। तब गाड़ी में भी उसने कुछ उथल-पुथल महसूस की। मारे घबराहट के उसकी सांस फूलने लगी। उसे लगा जैसे वह भी पानी में डूब रहा हो और अस्थियों वाली गठरी पानी में तैर रही हो। उसने झट से भीगी गठरी को उठाकर अपनी छाती में भींच लिया। उसका फिरन पानी से तर-बतर हो गया था। ठंड के मारे वह कांपने लगा।

जब वह इस भयानक सपने से जागा तो उसने देखा सभी यात्री सीटों पर ठीक-ठाक बैठे थे और गाड़ी भी ठीक गति से चल रही थी। वह सोचने पर विवश हो गया कि यह उसका कोई सपना या भ्रम मात्र ही था। इसलिए उसने इस दैविक चमत्कार के बारे में सोचना ही छोड़ दिया।

उसने गंगा के पुल से चलते हुए लोगों को अपनी ओर आते देखा। जब वे उसके पास पहुंचे तो उसकी दृष्टि लोगों के बीच चल रहे एक पूज्य महात्मा पर पड़ी। गेरूएं रंग की धोती, कंधे तक फैले हुए खिचड़ी बाल, गले में माला, लंबी दाढ़ी, होठों पर मंद-मंद मुस्कान, माथे पर केसर का लंबा तिलक। उसने सोचा क्यों न ललद्यद की अस्थियों का जल प्रवाह इसी महात्मा के हाथों से करवाया जाये। यह तो बड़े पुण्य का काम होगा। उसे अपनी सोच पर खुशी के साथ-साथ संतोष भी हुआ। जब वे उसके समीप पहुंचे तो उसने देखा उस पूज्य महात्मा के मुख पर एक आलौकिक चमक थी। उसने कांधे पर हाथ रखकर उसने पूछा- ''कहो भक्त! कैसे याद किया ?''

इतना सुनते ही वह चौंक पड़ा और सोचने लगा। इस महात्मा ने कैसे जान लिया कि मैं उन्हीं के बारे में सोच रहा हूं। फिर मन ही मन प्रसन्न हुआ कि उसने महात्मा के बारे में ठीक ही सोचा था।

''स्वामी जी! मैं कश्मीर से इन अस्थियों का जल प्रवाह करने आया हूं।''

उसकी बात सुनते ही महात्मा मुस्कुराने लगे।

''बेचारा कश्मीरी शरणार्थी होगा।'' एक श्रद्धालु ने सहानुभूति जतलाते हुए कहा।

''स्वामी जी! कश्मीर में मुसलमानों ने हमारे पंडित भाइयों पर बहुत अत्याचार किए हैं। शायद यह भी उनमें से एक होगा।'' दूसरे ने बोझिल आवाज में कहा।

''आप कश्मीरी पंडित हैं ?'' भीड़ में से किसी ने पूछा।

उसकी बात सुनते ही क्षणभर के लिए वह चिंतित हो गया और बोला- ''जी नहीं।''

उत्तर सुनते ही सभी स्तब्ध हो गए। लेकिन स्वामी जी ने प्रेम भाव से मुस्कुराते हुए पूछा-

''कौन हो तुम ?''

''मैं एक साधारण मनुष्य हूं। परन्तु धर्म की पहचान से मुसलमान हूं। मेरा नाम सैयद फज़लदीन है।''

''मुसलमान ?''

''दूर से ही बात करो।'' भीड़ में से कोई क्रोध से चिल्लाया। सुनते ही फज़लदीन दो कदम पीछे हट गया। उसकी ओर देखते हुए स्वामी जी मुस्कुराते हुए दो कदम आगे बढ़े

और उसके बराबर खड़े हो कर कुछ कहना ही चाहते थे कि एक श्रद्धालु जोर से बोला-

"स्वामी जी! आप इस नीच से दूर रहें। इस को छू कर आप भ्रष्ट हो जायेंगे।"

स्वामी जी ने बड़े गांभीर्य के साथ भीड़ की ओर देखा और बोले "भक्तो! कोई मनुष्य जन्म से नीच नहीं होता। उसके बुरे कर्म ही उसे नीच बनाते हैं। क्रोध करना अच्छी बात नहीं है।" फिर वह उससे बोले-

-"अरे भले पुरुष! इन भटके हुए लोगों की बातों का बुरा मत मानना। पर इन्हें समझाओ मुसलमान तो शवों को दफनाते हैं। फिर यह अस्थियां कैसी ?"

स्वामी जी की बात सुनकर उसका माथा ठनका। उसने सोचा- "यह सच ही कह रहे हैं। मुसलमान और अस्थियां ? भला यह कैसे हो सकता है ? इन्हें तो पूरी बात बतानी पड़ेगी। - इसलिए वह स्वामी जी से बोला- "महाराज। यह अस्थियां किसी मुसलमान की नहीं। अपितु ललद्यद की हैं। वह एक हिंदू साध्वी थी। वह पूज्या देवी हम सब कश्मीरियों की मां थी। हम मुसलमान उन्हें श्रद्धा और सम्मान से लला आरफा कहते थे।"

"हां! मैं जानता हूं..... और मेरी जानकारी अनुसार भगवान शिव की उपासक इस साध्वी का नाम लल्ल योगेश्वरी था। पंडित उसे ललद्यद और मुसलमान लला आरफा कहते थे। परन्तु भक्त साढ़े छः सौ वर्ष बीत जाने के बाद आज तुम किस ललद्यद की अस्थियों को लेकर हरिद्वार आए हो।"

"हां महाराज! आप तो सब जानते हैं। फिर मुझ परदेसी को पहेलियों में क्यों उलझा रहे हैं ?"

- "केवल लोगों की जानकारी के लिए।"

"महाराज! यह सच है कि ललद्यद का जन्म आज से लगभग साढ़े छः सौ वर्ष पूर्व कश्मीर के एक गांव पांद्रियेठन में हुआ था। पिछले साढ़े छः सौ वर्ष से वो हमारे हर सुख-दुख में साथ-साथ रही है। हर मुश्किल में हम उनकी उंगली थाम लेते थे। उन्हें किसी ने भी बुढ़ापे की अवस्था में नहीं देखा। वो तो हर समय सदाबहार दिखाई देती थीं। इसे हमारा दुर्भाग्य ही समझिए कि वो दयामयी माँ अभी चंद दिन पहले ही हम से बिछुड़ गई। उनके जाने से हम कंगाल हो गए। बिल्कुल कंगाल। गहरा सदममा दे गई हैं ?"

"स्वामी जी! क्या यह गहरा सदमा नहीं ?" भीड़ में से किसी ने जोर से पूछा। "यह झूठ बोल रहा है। भला सोचिए जो देवी पिछले साढ़े छः सौ वर्ष से हृष्ट-पुष्ट जी रही थी। वो अचानक कैसे मर सकती है। सच तो यह है कि इन लोगों ने ही उस देवी की हत्या की है। ताकि यह उसकी संपत्ति के उत्तराधिकारी बन सकें। स्वामी जी! अब दिखावे मात्र के लिए उस देवी की अस्थियां लिए घाट-घाट घूम रहे हैं। यह तो पवित्र अस्थियों का अपमान है। अपमान।"

सैयद फज़लद्दीन इस भारी भीड़ में एक अपराधी की भांति भयभीत-सा खड़ा था। स्वामी जी को मुस्कुराते हुए देखकर उसे राहत मिली। उन्होंने शायद उसका डर भांप लिया था। इसलिए वह भीड़ से संबोधित हुए-''अरे भले लोगो! इसे भी कुछ बोलने का अवसर दो। तुम बहुत बोल चुके हो। अब इसकी बात सुनो।''

सैयद फज़लदीन ने डरी और सहमी हुई दृष्टि भीड़ कर डाली। लोगों को क्रोधित गुस्सा देखकर उसने स्वामी जी की ओर देखा। उनसे आंखें मिलते ही उसका सारा डर दूर हो गया। बस फिर तो वह एक दक्ष वक्ता की तरह बोलने लगा, ''महाराज! सदमा कहें या दुख। पर- अब तो उस स्नेहमयी माँ के बिना यह कठिन समय बिताना हमारे बस से बाहर की बात हो गई है। अब हम अत्याचार को अत्याचार कहने का भी साहस नहीं करते। हम लोगों ने तो अब बस चुप्पी-सी साध ली है। - और हम कर भी क्या सकते हैं। अब तो कोई बड़शाह भी नहीं होगा जो निर्दोष लोगों का साथ देगा और पंडित भाइयों को अपना घर छोड़ कर जाने न देगा। या पलायन कर गए लोगों का वापिस बुला लेगा। हाँ महाराज! यही मार-धाड़ ललद्यद के लिए गहरा सदमा साबित हुई और उसकी मृत्यु का कारण बनी।''

''फिर ?''

''फिर महाराज! निराशा ने लोगों को घेर लिया। पंडित भाई तो बहुत घबराए... और .... और कश्मीर से अपनी सारी चल संपत्ति समेट कर जम्मू और देश के दूसरे शहरों में जाकर बस गए। भला बेचारे करते भी क्या ? परदेस में इसी संपत्ति से ही अपनी गुज़र-बंसर का जरूरी सामान खरीद कर अपना गुज़ारा चला रहे हैं। लेकिन कुछ अचल संपत्ति जैसे घर, जमीन, बाग और खेत-खलिहानों के साथ-साथ एक बहुमूल्य और स्थायी विरसा वहीं छोड़ आए। जी हां! वो हमारे भाई जल्दी में ललद्यद को वहीं छोड़ आए। लेकिन ललद्यद कोई भूलने वाली चीज़ तो नहीं थी। वो तो दो भिन्न-भिन्न शरीरों में एक पवित्र आत्मा का नाम था।'' सैयद फज़लदीन ने लोगों की ओर देखा और अनुमान लगाया कि लोग उसकी बातें चाहे ध्यान से सुन रहे थे। परन्तु उनके चेहरों पर क्रोध झलक रहा था। उसने अपनी बात चालू रखते हुए कहा-''वो पल बहुत उदासी का था। ढलती सांझ में दूर पश्चिम में डूबते हुए सूर्य की लालिमा किसी निर्दोष के रक्त की तरह फैली हुई दिखाई दे रही थी। हम ललद्यद के पास बैठे कश्मीर के अंधकारमय भविष्य के बारे में सोच-सोच कर चिंतित हो रहे थे। द्यद अपने घुटनों पर दोनों हाथ रखकर चुपचाप बैठी लोगों की बातें सुन रही थी। उसे देख कर लग रहा था, मानो उसके चेहरे पर छाई उदासी ने सारी वादी (कश्मीर घाटी) को अपनी लपेट में ले लिया हो। अचानक पंडित त्रिलोकीनाथ धर बोला

-''द्यद! पंडित तो कश्मीर छोड़कर चले गए। अब तो हमारे कुछ ही घर बचे हैं। आपने हमारे बारे में क्या सोचा।''

वह उदास थी। लेकिन त्रिलोकीनाथ की बात सुन कर अचानक चौंक पड़ी। जैसे नींद में

उसने कोई डरावना सपना देख लिया हो। उसने त्रिलोकीनाथ की ओर देखा और बोली- ''सुनो त्रिलोकीनाथ! मैं एक मां हूं- और मां अपना घर नहीं छोड़ती। -भलाई इसी में है कि बच्चे भी मां का आँचल न छोड़े।'' उसकी आवाज में दुख, तड़प और उदासी थी। वह रुंधे स्वर में बोली- ''मैं जानती हूं कि अब तुम्हारे पांव इस धरती से उखड़ चुके हैं। लेकिन एक बात याद रखना- अपनी धरती से उखड़े हुए वृक्ष की जड़ें कभी भी परायी धरती पर नहीं लगती।''

ललद्यद की बातें सुनकर त्रिलोकीनाथ बुत्त-सा बन गया। द्यद की आंखों में आँसू भर आये, उसने अपना दायां हाथ घुटने से उठाया और उसकी पहली उँगली दांतों तले दबा ली। हम .समझ गए कि वो आजकल के हालात पर दुख प्रकट कर रही थी। सुनाते-सुनाते फज़लदीन रो पड़ा। थोड़ी देर के लिए वह चुप हो गया। रुमाल से अपनी आँखें पोंछ कर उसने ठंडी आह भरी और सुनाने लगा-''महाराज! शायद लोग नहीं जानते कि दायें हाथ की पहली उंगली जो उसने दांतों तले दबाई थीं- वह कितनी चमत्कारी थी। कहते हैं जब कश्मीर के प्रसिद्ध ऋषि हज़रत नूरूदीन वली जिन्हें हम प्यार और आदर से नुंदऋषि कहते थे पैदा हुए तो उन्होंने कई दिनों तक मां का दूध नहीं पिया। यह देख उनके माता-पिता बहुत चिंतित हुए। एक दिन ललद्यद अचानक वहां पहुंच गई। उन्होंने बड़े प्यार से मुस्कुराते हुए बच्चे को गोद में ले लिया और वही चमत्कारी उंगली उसके मुंह में डाल दी। उंगली ने मानो मां के वक्ष का रूप ले लिया और उससे दूध की धारा फूट पड़ी। तब ललद्यद ने बड़े प्यार से नन्हें से कहा-''पी ले बच्चे! दूध पीने में कैसी शर्म। अरे! यदि दुनियां में आने की शर्म नहीं की तो दूध पीने में कैसी शर्म ?'' कहते हैं द्यद की बात ने जादू का सा असर किया। नन्हा नूरूदीन झट से उंगली चूसने लगा। जैसे मां का दूध पी रहा हो। जाते-जाते वह भविष्यवाणी कर गई- ''याद रखना। यह बच्चा कोई साधारण बच्चा नहीं। इसमें वह तेज है जो अज्ञान को जढ़ से उखाड़ फेंकेगा।''

''हां बंधु! तुम ठीक कह रहे हो।'' स्वामी जी ने उसकी बात की पुष्टि करते हुए कहा-''ललद्यद की यह बात बिल्कुल सच हुई और आगे चल कर हज़रत नूरूदीन वली ने इस्लाम का प्रचार करके अज्ञान के अंधकार को दूर कर दिया। लेकिन तुम त्रिलोकीनाथ की बात कर रहे थे। हां! तो फिर क्या हुआ ?''

स्वामी जी की बात सुन कर वह चकित हो गया और उसका अनुमान यकीन में बदल गया कि वो संसार में ईश्वर द्वारा भेजा हुआ सच्चा संत महात्मा है। इसीलिए लोगों के मन की बात को सहजता से जान लेता है। उसने अपनी बात जारी रखते हुए कहा- ''स्वामी जी! अगला दिन बड़ा अशुभ था। प्रतिदिन की तरह हम लला आरफा के पास बैठे थे। मेरे साथ अज़ीजदीन, गुलाम मुहम्मद, रशीद वांगर, मुनीर मकदूमी, रहमान कुरेशी, रज़ब भट्ट और दूसरे कई लोग थे। पर-त्रिलोकीनाथ धर, पुष्कर नाथ वांचू, मक्खन लाल कोल, जिया लाल हंडू, मोती लाल भान और भी कितने लोग नहीं थे। उन्हें न देखकर हमें हैरानी भी हुई और दुख भी। बाद में पता चला कि वह भी कश्मीर छोड़कर चले गए थे। उस समय लल मां ने एक

झुरझुरी ली और अपने दायें हाथ की वह चमत्कारी उंगली दांतों तले दबा ली। तभी अचानक एक अजीब सी घटना घटी। जब मां ने वो चमत्कारी उंगली मुंह से बाहर निकाली तो उससे दूध नहीं, रक्त की बूंदे बरसात की तरह बरसने लगी। यह देखकर हम सब बहुत डर गए। उसने वर्षों पुरानी जपमाला को हाथ में ले लिया। पक्के धागे में पिरोए जपमाला के सुंदर मनके रक्त से लयपथ हो गए थे। फिर अचानक धागा टूट गया और एक-एक करके मनके गिरने लगे और उसकी उंगलियों की गति रुक गई। देखते ही देखते लल मां जपमाला के मनकों की तरह टूट कर बिखर गई।'' सैयद फज़लदीन एक लंबी आह भरकर, चुप हो गया। उसकी बातें सुनकर सभी उसे विस्मय से देखने लगे।

''और अंतिम संस्कार.... ?'' स्वामी जी ने चुप्पी तोड़ते हुए पूछा।

''मैंने इन अपने हाथों से किया है।'' उसने अपने दोनों हाथ स्वामी जी को दिखाते हुए कहा।

-''अब उन्हीं अस्थियों का जल प्रवाह करने आये हो।''

''जी हां।''

''पर अस्थियां कहां हैं ?''

''इसी गठरी में।''

''अरे भाई! तुम्हारी गठरी तो बिल्कुल खाली है।''

''नहीं स्वामी जी! इसमें लल मां की पवित्र अस्थियां हैं।''

पर-गठरी सचमुच खाली थी। इस आशातीत दुर्घटना ने फज़लदीन को एक नयी दुविधा में डाल दिया।

- परायी धरती पर अनजान लोगों की भीड़ में वह एक अपराधी की भांति खड़ा था। लोगों का क्रोध और उनकी तरह-तरह की बातें सुनकर उसकी घबराहट बढ़ रही थी। वह तो वास्तव में ही लोगों में झूठा सिद्ध हो चुका था। अब करे तो क्या करे ? कहे तो क्या कहे ? किससे कहे ? तभी उसने देखा स्वामी जी सभी को चुप रहने का संकेत करते हुए कह रहे थे-''भक्तो! शांत हो जाओ। सैयद फज़लदीन जिस पर तुम संदेह कर रहे हो उसे मेरी दृष्टि से देखो। तभी तुम्हें बात समझ में आएगी।''

स्वामी जी की बात सुनते ही लोग उनकी आंखों में आँखे डालकर देखने लगे। उन्हें यूं महसूस हुआ जैसे उनके सामने स्वामी जी नहीं अपितु फज़लदीन खड़ा हो। कानों में स्वामी जी की आवाज टकराई। ''भक्तो! ललयोगेश्वरी, ललद्यद, लला आरफा एक ही शक्ति का नाम है। एक सांझी सभ्यता का केन्द्र बिंदु। यह भी सच है कि उसकी

साढ़े छः सौ वर्ष से भी अधिक आयु थी। फिर अचानक उसकी मृत्यु कैसे हो गई ? फज़लदीन ने बिल्कुल सच कहा है। लेकिन आपके सामने प्रश्न यह है कि अस्थियां कैसे खो गई ?'' लोगों ने एक दूसरे की ओर देखा। मानों वे बात की तह तक पहुंचने का यत्न कर रहे हों।

स्वामी जी की आवाज ने उन्हें अपनी ओर खींचा- ''मैं पहले भी कह चुका हूं कि लल्लयोगेश्वरी कोई साधारण स्त्री नहीं थी। वह एक आलौकिक शक्ति थी। उसके सिर पर अगर पानी से भरा मटका भी फूट जाता तो पानी वहता नहीं। ज्यूं का त्यूं सिर पर टिका रहता। वह अगर तपे हुए तंदूर में कूद जाती तो वह तंदूर भी ठंडा हो जाता। वह कश्मीर की मिट्टी से ही प्रकट हुई थी। भला यह कैसे हो सकता था कि स्वर्ग सिधारने पर उसकी आत्मा तो कश्मीर में ही रहती और अस्थियों का जल प्रवाह कश्मीर से बाहर होता ? अरे भक्तो! शरीर और आत्मा का बड़ा घनिष्ट संबंध होता है। फिर ऐसा पवित्र शरीर जिसमें लल्लयोगेश्वरी की आत्मा सैंकड़ों वर्ष रही हो। उसकी अस्थियां उस मिट्टी से दूर कैसे जा सकती थीं। उसे अपनी अस्थियों का जल प्रवाह कश्मीर से बाहर कदापि मंजूर नहीं था।''

भीड़ में खड़े लोगों का ध्यान प्रवचन की ओर था। लेकिन नज़रों में सैयद फज़लदीन का चेहरा समाया हुआ था। जिसका व्यक्तित्व अब कुछ-कुछ स्पष्ट हो रहा था। एक भला सा पुरुष। सत्य वक्ता! मनुष्यता से भरपूर----।

''भक्तो! यह बहुत अनोखी कथा है। ध्यान दें- जब अस्थियों के जलप्रवाह की बात वितस्ता (जेहलम) तक पहुंची तो उसके शांत पानी में एक जोर की लहर उठी और जिस गाड़ी में फज़लदीन अस्थियों की गठरी लेकर बैठा था। उसी में से वितस्ता का पानी लल्लयोगेश्वरी की अस्थियां बहा कर ले गया। मैंने पहले भी कहा था कि सैयद फज़लदीन ईश्वर का एक सच्चा भक्त है। उसे इस घटना का अनुमान तो हुआ होगा। लेकिन सच तो यह है कि वह इस बात को समझ नहीं पाया। उन अस्थियों का जलप्रवाह तो पहले ही इसके हाथों वितस्ता यानि जेहलम में हो चुका है। अस्थियां तो कश्मीर से बाहर आई ही नहीं। यहाँ तो केवल खाली गठरी ही पहुंची है।'' फिर वह सैयद फज़लदीन से बोले- ''क्यों मित्र क्या मैं ठीक कह रहा हूं ?''

तभी उसे याद आया पांद्रियेठन में अस्थियों वाली गठरी में कुछ हलचल-सी हुई थी। ऐसा लगा था मानों गठरी पानी में बह रही हो और वह स्वयं भी पानी में डूब रहा हो।

''क्या यह जेहलम का पानी था। जो अस्थियां बहा कर ले गया ? वह अपने-आप पर हंस पड़ा और उसने अस्थियों वाली गठरी को झाड़ कर कांधे पर रख लिया और सामने खड़े लोगों की ओर देखा जो अपने से ही लग रहे थे। अनजान नहीं।''

अनुवाद : नीरू शर्मा



नंगे पाँव

❑ डॉ० जितेन्द्र उधमपुरी

कभी-कभी
मुझे लगने लगता है कि
नहीं है
बारह राशियों में से
मेरी कोई भी राशि।
मैं अनाम, गुमनाम,
कोई पता-ठिकाना नहीं मेरा।
नहीं है मेरे हिस्से में कोई
दिन, वर्ष, महीना
समय को पल-पल है
मुझे पीना।

पर,
मैं ऐसा होने नहीं दूँगा
सारी आग समेट लूँगा।
लाभ-हानी,
खुशी-लाचारी
यात्रायें और अनुष्ठान,
होने दो राहु बलवान।
नहीं चाहता मैं
छिपे धन की प्राप्ति
गिरने दो आर्थिक स्थिति।
नहीं पहनूंगा
हीरे की अगूंठी
नहीं चाहिये मुझे
प्रशंसा झूठी।

कब मांगे मैंने
मूंगे, पुखराज,
ढोल, नगाड़े, राज-काज।

मुझे नहीं करनी
सम्पत्ति अर्जित
करने दो ग्रहों को प्रभावित
बहने दो दुःख के दरया
चलने दो आपदाओं की आंधी
मैं टूटूंगा नहीं कहीं बीच में।
मुझे विश्वास है कि
नये रास्ते निकलेंगे मुझसे।
मैं मील-पत्थर तराशूंगा
और देख लेना
इतिहास
मुझ तक पहुँचेगा स्वयं
नंगे पांव।



कब तक?

❑ चन्द्र कान्ता

तन से ही नहीं
मन से भी युद्धरत है आदमी।
समझदारियों को धकियाता।
रणों में लहूलुहान होकर भी
चेतता नहीं, न भूलता है शोक मनाना।
गीता ज्ञान के प्रकाशवृत्त बीच
छूट गए ठिकानों की ईंटों में चिना।

चार बांसों पर टिकी छत में
रोप देता है उम्मीदें और स्वप्न
अगली पीढ़ियों को सौंपता है
मिट्टी के गीत
मिट्टी हुए पुरखों की गंध।

पकड़ता है छूटा सिरा
कि भटक न जाये
बदहवासियों के चौराहों पर
बेनाम न हों, अजन्मे बच्चे।

भूले नहीं चश्माशाही के पानी का स्वाद!
अरणिमाल और महजूर के गीत!
कुम्हार की जाई के लिए
मालायें गूंथता कवि
और सदायें देती यूसुफ को
हब्बा दीवानी

हवाओं से लड़ते चीड़
क्या देखें होंगे 'वुलर' में

इतिहास की परछाइयां ?
नष्ट हुए कालखंड ?

हरमुख पर बिखरी आस्थाओं अरदासों की चीख
कैसे अनसुनी रहेगी ?
मेरे हाथों की छुअन के लिए उदास
'कोतरखान' की बतखें, क्या भूलेंगी
'हारी पर्वत' से 'गुपकार' तक बिखरी कहानियां ?

मेरे देश के कर्णधारो,
संसद की बेजान दीवारों में
चिने तुमने मेरे स्वप्न।
मेरे पुरखों की आस्थायें।
मेरी हवाओं को दी उम्रकैद।

मुझे मेरी मिट्टी से उखाड़ कर
पाप किया तुम्हारी राजनीति ने।
मैं कब तक करूं
तुम्हारी भूलों का प्रायश्चित ?
और सहती रहूं
छाती के पीपल बने
तुम्हारे घिस गए आश्वासन ? ? ?

संपर्क : *3020, सैक्टर-23, गुड़गांव – 122 017 (हरियाणा)*



सात कविताएं

❑ रामकुमार आत्रेय

प्रकृति की गोद

जब भी मैं
किसी बच्चे को खेलते देखता हूं
तो लगता है
कि प्रकृति की गोद में बैठा हूं
और देख रहा हूं
किसी फूल का खिलना
या किसी कोंपल का फूटना
या किसी चिड़िया का नहाना-चहचहाना।

मिट्टी

गांव छोड़कर
नगर में बस गए
मित्र के जन्म-दिवस पर
वहां पहुंचने से पहले
मैंने पत्र लिखकर
पूछा उससे
कि आते वक्त
मनचाहे उपहार के रूप में
तुम्हारे लिए मैं क्या लाऊं ?
उत्तर मिलने पर
मैं घबराया बैठा हूं
कि आखिर
ले जाऊं भी तो कैसे ले जाऊं
चुटकी भर मिट्टी अपने गांव की।

सच

झूठ की
चमचमाती दुनिया में
सच की पहचान
बहुत आसान है
सच उसी को समझो
जो फटेहाल
और लहूलुहान है।

संपर्क : *साहित्य-कुटीर, ग्राम व डाकघर करोड़ा, जिला कैथल, हरियाणा-136 043*

चांद और जुगनू

चांद का जब
कहीं अतापता भी न था
जाने कितने
जुगनुओं ने तब
जलाकर अपने लहू को
लड़ी थी एक लड़ाई
रात के अंधेरे को
उजाले में बदलने के लिए
और लोग हैं कि आज
आँखें बन्द किए
कर रहे हैं जय-जयकार
केवल चांद का।

नंगे

वहां
नंगे तो
नंगे थे ही
पर ढके लोग
उनसे भी ज्यादा
नंगे थे।

निवाला

और
बढ़ेगी भूख तो
किसी का निवाला
छीन कर खाने से
भूख का इलाज तो
निवाला बनने में है।

औरत

पूछा उन्होंने
कि क्या होती है
औरत ?
मैंने चुपचाप
एक जलती मोमबत्ती
उनके सामने रखदी।



उन्माद के पार

❑ राजेन्द्र निशेश

अखबार की सुर्खियों में
अब होती नहीं
कोई अच्छी खबर।
शायद!
एक भुतवा हवेली में
तबदील हो गई है दुनिया
और
भूतों का तांडव-नृत्य
देखने की लाचारी को
ढोता है आकाश!

शायद हरी-भरी घाटी में
उतरने लगा है अंधेरा
पगध्वनि की चाप को समेटे,
बारूद की गंध
हवा के साथ
फैलने लगी है अनवरत।
एक शोक-सभा का समाचार लिये
हाशिए के अन्दर
मुखरित होने लगा है
कोई ठीठ सत्य!

अखबर की सुर्खियों में
अब होती नहीं
कोई अच्छी खबर,
जो जेहन के आकाश को
दे सके कुछ ताजा हवा।



संपर्क : *2698, सैक्टर-40-सी, चण्डीगढ़-160 036*

क्रांति

❑ विजय मल्ला 'मेहर'

कोई भ्रांति भ्रम न हो
विश्वास रत्ती कम न हो
पीले-पीले ज़र्द से चेहरे
यही लाएंगे क्रांति
पर विराम,
हां ज़रा-सा अंतराल

जिस्म जब तक रक्त रंजित हो न जाएं
सपने और नींदें सभी की खो न जाएं।
अधरों पर मुस्कानें सारी सो न जाएं

क्यों हमेशा भूल जाते हो
समय है एक मछेरा
फांस ही लेगा
कोई इतिहास का नायक
तो सारे लोग देखेंगे

समय जब बांट देगा सब अंधेरा
तब ही फूटेगा सवेरा
पीली-पीली लौ दिये की
पीले-पीले ज़र्द से चेहरे
यही है
जो कभी लाएंगे क्रांति



संपर्क : 21, लक्ष्मी नगर, सरवाल, जम्मू।

स्वतंत्रता दिवस

❑ सुनील शर्मा

स्वतन्त्रता का दिवस सबसे पावन
मनाएं कुछ ऐसे शपथ लें निभाएं
पवन शांति की बन के घूमें धरा पर,
गगन चूम लें, चूम लें सब दिशाएं

क्षितिज से भी आगे हो अपनी नजरिया
कि पथ को दिखाएंगे बन के बिजुरिया
कि सींचें धरा को हम बन के बदरिया
कि हर राधिका को मिले इक संवरिया
बनें लाल आभा हम ऐसी सुबह की
कि भक्षक अंधेरे न फिर लौट पाएं

सिसकते हुए सारे जेहलम के चप्पू
बो सब देवदारों, चिनारों के आंसू,
वो धुंधुवाते बादल से सपने वो हर सू
वो हिंसा हवस में घिरे कोरे गेसू
भरें घाव संजीवनी से सभी के
तरुं बन के सब ठूंठ फिर मुस्कुराएं

न विस्तार फैले विषैले चलन का,
न उन्माद ही पोर घेरे वतन का,
बचे शस्त्र कोई न जग में हनन का
ये चिंतन करो अब समय है मथन का,
यहां चांदनी चांद जी भर उडेले,
यहां श्वेत पंछी सदा गीत गाएं

चलो आगे लिखें कुछ ऐसे कहानी,
कि सीमाएं लांघे न सरयू का पानी,
न डल झील की अब लुटे फिर जवानी
रंगे न लहू से चुनर कोई धानी
छवि अपनी धूमिल कभी हो न जग में,
कदम प्रेम के न कभी डगमगाएं।

★ ★ ★

संपर्क : *201/3, छन्नी हिम्मत*

ग़ज़ल

❑ मालिक राम आनन्द

सहराओं में सब्ज़े को तुम
ख़ाम ख़्याली कहती हो,
उगे सराबों में जो काई
तब हरियाली कहते हो।
खिले जो कांटों के अंदर तुम
उसको डाली कहते हो।
खरे असूलों, सच्चे जज़्बों
को तुम गाली कहते हो।
जो गुलशन को खून पिलाएं उनको
छोले आतिश बाद
जो पौधों को ज़हर से सींचे
उनको माली कहते हो।
रोशनियों की शबनम को जो
फूल कली गुंचे तक लाएं
तुम किरणों से फैज़ उठाकर
उनको काली कहते हो।
जिन हाथों ने छाले लेकर
इस धरती का रूप संवारा,
तुम भी मालिक उन हाथों को
आज सवाली कहते हो।

✯ ✯ ✯

पुस्तक समीक्षा

काशीनाथ दर रचनावली : एक अध्ययन

'काशीनाथ दर रचनावली' शीर्षक पुस्तक के प्रकाश में आ जाने के बाद साहित्यिक क्षेत्रों में यह चर्चा होना स्वाभाविक है कि कश्मीर के मूर्द्धन्य लेखक, कवि, आलोचक, अनुसंधित्सु एवं अनुवादक प्रो. काशीनाथ दर का सृजनात्मक फलक कितना वृहत्तर और ज्ञानप्रद था। उन्होंने न केवल कश्मीरी भाषा एवं साहित्य पर सारगर्भित लेख लिखे अपितु इतिहासकार कल्हण, गीतकार बिल्हण, जनकवि क्षेमेन्द्र के रचना संसार के अलावा पावन वितस्ता नदी एवं पंचस्तवी पर भी प्रकाश डाला। देश, धर्म और दर्शन के वे अद्‌भुत संगम थे। एक कवि होने के अतिरिक्त उन्होंने पत्रकारिता के क्षेत्र में भी अपनी पैठ जमाई। ऐसे ही बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार प्रो. दर से हमारा परिचय कराया- कश्मीर के प्रबुद्ध हिन्दी विद्वान एवं कोशुर समाचार के सम्पादक प्रो. चमन लाल सप्रू ने। उन्हीं के अथक परिश्रम का फल है कि आज यह ज्ञानवर्द्धक पुस्तक पाठकों के हाथ में है।

इस पुस्तक को प्रकाशित करने का श्रेय जम्मू-कश्मीर की कला, संस्कृति एवं भाषायी अकादमी को जाता है, जिसने ऐसे ही मौलिक लेख और अनुवाद को लेकर कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ पाठकों तक पहुंचाए हैं। पुस्तक के सम्पादन और संकलन के दायित्व के बारे में अकादमी के सचिव प्रकाशकीय में लिखते हैं, ''उनकी (प्रो. दर की) यथा उपलब्ध रचनाओं के संकलन एवं सम्पादन का श्रमसाध्य दायित्व हमने कश्मीर के प्रबुद्ध हिन्दी विद्वान प्रो. चमन लाल सप्रू को सौंपा था। उनके विशिष्ट सहयोग से ही इसका प्रकाशन संभव हो सका।''

208 पृष्ठों की पुस्तक को सम्पादक ने चार खण्डों में विभाजित कर इसे और भी पठनीय बना दिया है। प्रथम खण्ड में 'वितस्ता', पंचस्तवीशैवाचार्य अभिनवगुप्त और 'कश्मीर का ऋषि सम्प्रदाय' नामक लेख हैं, द्वितीय खण्ड में इतिहासकार कल्हण, गीतकार बिल्हण और जनकवि क्षेमेन्द्र पर सारगर्भित लेख हैं वहीं तृतीय खण्ड में संत कवयित्री लल्लेश्वरी, सूफी संत नुंदऋषि, कश्मीरी गीत लेखिका हब्बाखातून तथा कश्मीर काव्य के विकास में अग्रणीय भूमिका निभाने वाले कवि अब्दुल्ल अहद आजाद पर शोधपरक लेख

दिए गए हैं। अंतिम खण्ड में 'कश्मीर में हिन्दी प्रचार और प्रसार' के साथ-साथ कश्यप मासिक पत्र से उद्धृत प्रो. दर द्वारा लिखित सम्पदाकीय भी संकलित है।

'काशीनाथ दर रचनावली' की विशेषता यह भी है कि इसमें संगृहीत आलेख प्रो. दर की शोध के प्रति उनकी रुचि को दर्शाती है। उन्होंने जो कुछ भी पाठकों को देने का प्रयास किया है वह इतना सटीक, तर्कपूर्ण और उद्धरणों सहित है कि आलेखों में उठाए गए किसी भी बिंदु के बारे में संदेह की कोई गुंजाइश नहीं रहती, अपितु इन लेखों के प्रकाश में आने से शोधार्थियों के लिए भी यह पुस्तक एक आकर्षण का केन्द्र बिन्दु हो सकती है और है भी। लेखक ने कई संदर्भ ग्रन्थों की सूची एक-दो लेखों को छोड़कर प्रायः सभी लेखों में दी है। उन्होंने जिन ग्रन्थों का उल्लेख किया है उनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं- नीलमतपुराण, राजतरंगिणी, जोनराजतरंगिणी, वितस्ता महात्म्य, भृंगीश संहिता, आदि पुराण, आइने अकबरी, विक्रमांकदेव चरितम्, तंत्रालोक, शिवसूत्रविमर्शिनी, पंचस्तवी, ईश्वर प्रत्यभिज्ञा विवृत्ति विमर्शिनी, प्रत्यभिज्ञा दर्शन, परमार्थसार तथा तारीख-ए-कश्मीर, सुल्तानस ऑफ कश्मीर, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नूरनामा, काव्य प्रकाश आदि।

केवल संदर्भ देकर लेखक ने लेखों की इतिश्री नहीं की अपितु तथ्यों को तारतम्य में जोड़कर सामग्री को व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किया है। काशीनाथ दर रचनावली पुस्तक को समीक्षा के बहाने पढ़ने का अवसर मिला। लेख पढ़ते हुए पुस्तक को आद्योपांत पढ़ने का मोह न त्याग सका। भाषा में इतना प्रवाह है कि पाठक रवानगी के साथ लेखों का अध्ययन कर सकते हैं। पुस्तक में एक-एक विषय का विस्तारपूर्वक चित्रण कर उस विषय के प्रत्येक बिंदू को अलग से विश्लेषित किया गया है। इस पुस्तक का अध्ययन करते हुए बहुत कुछ जानने-समझने का अवसर मिला।

पुस्तक के अंत में दो कविताएं-'चैतन्यमाला' तथा 'इति' पढ़ने को मिली। ''चैतन्यमाला कश्मीर के सर्वप्रथम शैवाचार्य वसुगुप्त के 'शिवसूत्र' पर आधृत है, और 'इति' में कवि यथार्थ जीवन जीने की ओर अग्रसर है। शैवदर्शन की साधनाओं के द्वार तक ले जाने वाली चैतन्यमाला कविता में बौद्धों के शून्यवाद, वेदान्त के मायावाद और खेटमल द्वारा प्रचलित भेदाभेद का भी उल्लेख है। वसुगुप्त के आत्ममंथन से ज्ञान अमृत की जो धारा प्रस्फुटित हुई उसी ओर कवि संकेत करता हुआ-

'अणु' और 'शिव' के भ्रमात्मक 'भेद'
की मोम-प्राचीर
उनकी तपस्या की आंच से पराभूत होकर
'अभेद' का रूप पा गई (पृष्ठ - 206)

'इति' नामक कविता में कवि यथार्थोन्मुखी है। दिन और रात के महामिलन में प्राय: उसे अवसाद के क्षण घेरे लेते हैं, वह बनावटी हंसी और बहुरूपिया बनकर जीवन जीना नहीं चाहता और उनको भी चेताता है जो वैसा जीवन जीकर स्वयं को ही धोखा देते हैं।

''मुझे, न जाने अवसाद क्यों घेर लेता है ?

× × ×

क्या मानव भी इसी प्रकार
हंसने के भ्रम में युग-युग/ से रोता आया है ? (पृष्ठ -207)

परिस्थितिवश, दानव अथवा मानव
का मुखौटा पहन कर/बहुरूपिया होकर
जीवन की कटुता को भूलने का/निष्फल खेल खेलता आ रहा है। (पृष्ठ -208)

यद्यपि प्रो. दर को कालेज जीवन से ही न केवल लेखक के रूप में पत्रिकाओं में छपने का वरन् कश्मीरी हिन्दी साहित्य सम्मेलन श्रीनगर की हिन्दी मासिक पत्रिका 'कश्यय' का सम्पादन करने का भी अवसर मिला। वे इस पत्रिका के मुख्य सम्पादक रहे। इसी पत्रिका में उनके छपे सम्पादकीयों में से तीन (वसुधैव कुटुम्बुकम्, हिन्दी प्रकाशकों का दायित्व तथा जम्मू के साथियों से) को इस पुस्तक में संकलित किया गया है, ताकि पाठक पत्रकारिता के क्षेत्र में उनकी दक्षता से अवगत हो सके।

चतुर्थ खण्ड में 'कश्मीर में हिन्दी प्रचार और प्रसार' के परिप्रेक्ष्य में एक विस्तृत लेख लिखा गया है जिसमें एक भाग में चौदहवीं शताब्दी से सन् 1947 ई. तक तथा दूसरे भाग में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 1984 तक की समयावधि के बीच हिन्दी की दशा और दिशा का अवलोकन किया गया है। कश्मीर में हिन्दी के प्रारम्भिक दौर में 'महानय प्रकाश' कृति का उल्लेख है। तत्पश्चात् ललद्यद, रूपभावनी, कृंष्ण जू राजदान, ठाकुर मनवटी, मास्टर जिन्दा कौल, दीनानाथ नादिम, पंडित श्रीधर कौल, प्रो० ताराचंद सप्रू, पं० जानकी नाथ कौल 'विद्यार्थी', कश्यय बंधु द्वारा हिन्दी के प्रति प्रदर्शित निष्ठा को दर्शाया गया है। यह वह समय था जब कश्मीर में हिन्दी समाचार पत्र 'महावीर' प्रकाशित हुआ। महाविद्यालयों की पत्रिकाओं में हिन्दी के खण्ड जोड़े गए, जिनमें हिन्दी के अध्यापकों और विद्यार्थियों का योगदान रहा। इस आन्दोलन से जुड़े हिन्दी प्रेमियों को प्रो. दर भूले नहीं हैं। हिन्दी के प्रचार प्रसार के लिए राष्ट्रभाषा प्रचार समिति-वर्धा की उल्लेखनीय भूमिका का भी उन्हें स्मरण है। रेडियो, दूरदर्शन के अलावा कश्मीरी भाषी लेखक हिन्दी में भी जो साहित्य प्रकाशित करते रहे हैं उसकी भी प्रो. दर ने थाह ली है।

पुस्तक का प्रथम लेख ही **'वितस्ता'** पर है। पावन वितस्ता के महात्म्य को प्रतिपादित करने के लिए जहां दीनानाथ नादिम ने कश्मीरी में नृत्य नाटिका लिखी, वहीं प्रो० दर ने हिन्दी

में गवेषणात्मक लेख लिखा। वितस्ता का आदि स्रोत कहां है, क्या इस नदी के दोनों तटों पर कभी मन्दिर बनाए गए थे, इस नदी का उल्लेख किस-किस प्राचीन ग्रन्थ में है, इन सभी प्रश्नों के उत्तर 'काशीनाथ दर रचनावली' में मिलेंगे। तट पर निर्मित मन्दिरों को नष्ट करके कभी शाह हमदान खानकाह बनाया गया, जो स्थान कभी काली माता के मन्दिर का था और कभी 'दि्ददामठ' आज 'द्यदमर' में परिवर्तित हो गया।

'पंचस्तवी' मूलत: एक शैव ग्रन्थ है जिसके बारे में एक विस्तृत लेख है। साथ ही 'पंच शब्द' में वर्णित गूढ़ भाव को भी व्याख्यायित किया गया है। पंचस्तवी के पांच स्तवों- लघु, चर्चास्तव, घटस्तव, अम्बास्तव और सकलजनीस्तव को समझना हो तो इस लेख का अध्ययन नितांत आवश्यक है। शैव दर्शन का प्रतिपादन भी कश्मीर में ही हुआ और कश्मीर में ही इस दर्शन के पांच स्तव उपलब्ध हैं। जहां शैव दर्शन की चर्चा हो और अभिनव गुप्त की बात न हो तो चर्चा अधूरी समझी जाएगी। शैवाचार्य अभिनव गुप्त ने शैव दर्शन का मन्थन ही नहीं किया अपितु भगवद्गीता पर शैव-दृष्टिकोण से एक भाष्य लिखा, आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक पर लोचन नामक वृत्ति लिखी और भारत के नाट्य शास्त्र का सार भी प्रस्तुत किया। (पृष्ठ- 38)। प्रो. दर ने आश्चर्य व्यक्त किया है कि क्यों कल्हण, अभिनवगुप्त के बारे में मौन रहे हैं। शायद इसलिए क्योंकि कल्हण का विषय राजाओं का इतिहास देना था और अभिनवगुप्त किसी राजदरबार से सम्बद्ध नहीं थे। लेखक ने अभिनव गुप्त से पूर्व शिवपूजा के आदि स्रोतों का भी विशद वर्णन किया है।

कश्मीर में मुसलमान संतों ने 'ऋषि' शब्द को अपने सम्प्रदाय के लिए चुना। इसी सम्प्रदाय पर एक लेख **'कश्मीर का ऋषि सम्प्रदाय'** पुस्तक में संकलित है। कश्मीर में इस्लाम के आगमन के साथ ही मुस्लिम सूफी इस्लाम को फैलाने के लिए कश्मीर आए, वहीं ऋषि सम्प्रदाय के प्रवर्तक नुन्द ऋषि ने इस्लामी दृष्टिकोण के अनुरूप कश्मीरी चिंतन की व्याख्या की। एक तरह से ऋषि सम्प्रदाय कश्मीर में इस्लाम के प्रभुत्व को स्थापित करने के लिए था। उस समय तक कश्मीरी मूल्यों में केवल बौद्ध और हिन्दू मनीषियों का बोलबाला था। ''इस तरह गंगा-यमुना के साथ सरस्वती का भी पावन संगम निर्मित हुआ, यहीं सांझा जीवन दर्शन कश्मीरियों की अमूल्य निधि है।'' (पृष्ठ-72)

पुस्तक में पण्डित कल्हण, आचार्य बिल्हण, जनकवि क्षेमेन्द्र पर प्रकाश डालते हुए लेखक ने इन कवियों के जीवन प्रसंगों एवं कृतित्व को रेखांकित किया है। कल्हणकृत 'राजतरंगिणी' (ऐतिहासिक ग्रन्थ), बिल्हण कृत विक्रमांकदेव चरितम्, (एक ऐतिहासिक काव्य) चौर पञ्चाशिका (मार्मिक गीत) एवं कर्णसुंदरी (नाटिका) तथा क्षेमेन्द्र द्वारा रचित 'मन्जरियां, गुणाढ्य, बौद्धावदानकल्पलता, नृपावली, कलाविलास, समयमातृका, चारूचर्या, देशोपदेश आदि ग्रन्थों से लेखक ने दूसरे खण्ड में पाठकों का परिचय कराया है।

तीसरे खण्ड में कश्मीरी भाषा के कवियों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को उजागर करते हुए लेखक ने चौदहवीं शताब्दी की कवयित्री ललद्यद, समकालीन नुन्द ऋषि, सौलवीं शताब्दी की कवयित्री हब्बाखातून तथा आधुनिक कश्मीरी कविता के प्रणेता अब्दुल अहद आजाद की काव्य प्रतिभा की झलकियां प्रदर्शित की है। ललद्यद के 'वाखों' की अनुवाद समस्याओं की ओर भी ध्यान केन्द्रित किया गया है वहीं नुन्द ऋषि के श्रुकों के शाश्वत संदेश की महत्ता पर भी प्रकाश डाला गया है। कहीं विरहाग्नि में झुलस रही हब्बा के मार्मिक गीतों की गूंज भी यहां सुनाई देती है और कहीं आज़ाद की कविताओं में कश्मीर की अद्वितीय सुषमा बोल उठी है।

कहना न होगा कि बहुभाषाविद् प्रो० दर के लेखों का संग्रह है-'काशीनाथ दर रचनावली'। इसके अलावा उनकी अंग्रेजी और हिन्दी में 13 पुस्तकें हैं जिनमें 3 फुटकर हैं। इस पुस्तक के प्रारम्भ में उनका संक्षिप्त परिचय भी दिया गया है। 61 वर्ष की आयु में 11 अप्रैल 1984 में प्रो० दर का देहावसान हुआ।

'काशी नाथ दर रचनावली' का मूल्य मात्र 55 रुपए है। अकादमी ने इसलिए भी मूल्य कम रखा है, ताकि इस पुस्तक को अधिक से अधिक पढ़ सकें। पुस्तक का मुख पृष्ठ काफी आकर्षक बन पड़ा है। यह पुस्तक कश्मीर के इतिहास, संस्कृति, साहित्य एवं भाषा के संदर्भ में संग्रहणीय है। कश्मीर के अन्य विषयों के बारे में भी ऐसा ही शोध कार्य करने की नितांत आवश्यकता है। ऐसे कार्य शोधार्थियों के लिए नया मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं।

पुस्तक परिचय	
नाम :	**काशीनाथ दर रचनावली**
संकलन एवं सम्पादन	**प्रो० चमन लाल सप्रू**
प्रकाशक :	**जे. एण्ड के. अकादमी ऑफ आर्ट कल्चर एंड लैंग्वैजिज़ कनाल रोड, जम्मू।**
मूल्य :	**55 रुपए**
प्रथम संस्करण :	**2000**
पृष्ठ संख्या :	**208**



समीक्षक : डा० महाराजकृष्ण भरत
सम्पर्क : शारदा कालोनी, पटोली ब्राह्मणां,
मुट्ठी, जम्मू–181 205.

Regd No. 28871/76

December-January 2004



Published by the Secretary on behalf of J&K Academy of Art, Culture and Langugaes, Jammu and Printed at Rohini Printers, Kot Kishan Chand, Jalandhar City (Punjab)